कहानी-कला

विनोद शङ्कर व्यास

ज्ञान चन्द जैन

११२

कहानी-कला

कहानियाँ पढ़ते समय बहुधा पाठकों का ध्यान लेखक के विचारों पर ही केन्द्रित रहता है। उन विचारों का निर्माण कैसे होता है, इस पर प्रायः उनकी दृष्टि नहीं जाती। इस पुस्तक में कहानियों की रचना कैसे होती है, इसका आकर्षक ढंग से वर्णन किया गया है। कहानियों में प्लाट, चरित्र-चित्रण, वार्तालाप, आरंभ और अन्त तथा भाषा-शैली का विशेष महत्त्व है। इस पुस्तक में इन जटिल विषयों को बहुत ही सरलता पूर्वक समझाया गया है। पुस्तक के अन्त में प्रसादजी की एक कहानी का विश्लेषण करके उसकी रचना-कला का रहस्य खोला गया है। जो लोग कहानी लिखना सीखना चाहते हैं, उनके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

D.R. Regmi
M.A., M.Litt,
29.3.42

कहानी-कला

विनोद शङ्कर व्यास

ज्ञानचन्द जैन

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-कुटीर
बनारस

मूल्य चौदह आने

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस
मुद्रक—ना० रा० सोमण

क्रम

—:०:—

कहानी
कला

कहानी-कला का विकास

प्रायः सभी जातियों के इतिहास में सदैव से कहानियों की प्रधानता का प्रमाण मिलता है। इसका एक कारण यह भी है कि मनुष्य सदा से ज्ञान की खोज में भटकता रहा है। कथाओं में उसे अपनी ही भावनाओं का—अपने ही चरित्र का—चित्र मिलता है, इसलिए इनके प्रति उसका स्वाभाविक आकर्षण रहता है।

कहानियों के आकार-प्रकार, उसकी रूप-रेखा और कथा-सामग्री में कालानुसार परिवर्त्तन होता आया है।

प्राचीन युग में सब से प्रथम भारतीय साहित्य के 'ऋग्वेद', 'उपनिषद', 'सांख्य', 'पंचतंत्र', 'नन्दीसूत्र' और 'जातकों' में कथा-साहित्य का अनूठा संग्रह मिलता है। न्याय और दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों को समझाने के लिए, इन दृष्टान्तों और उपाख्यानों का उपयोग होता था। विचारों की दृष्टि से इनमें की कुछ कहानियाँ आज भी विश्व-कथा-साहित्य में बेजोड़ ठहरती हैं। रचना-संगठन की दृष्टि से इनमें और आधुनिक कहानियों में विशेष अन्तर है। केवल दृष्टान्तों में कुछ समता पाई जाती है। आख्यानों को न तो उपन्यासों की श्रेणी में रख सकते हैं, न

कहानियों की। वे एक अलग कोटि के हैं। प्रायः एक आख्यान के अन्तर्गत कितनी ही उपकथाएँ चलती हैं, जिनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं। सम्मिलित रूप में ये उपकथाएँ अवश्य एक उद्देश्य की पूर्ति करती हैं।

ग्रीक और लैटिन कथा-साहित्य ने आगे चलकर अन्य युरोपीय देशों के कहानी-साहित्य को जन्म दिया। 'हेरोडोटस' ने अपनी पुस्तक में अपने से १०७ वर्ष पहले के कहानीकार 'इसाप' का उल्लेख किया है। 'इसाप' किसी कल्पित व्यक्ति का नाम था, जिसने भारतीय कथाओं पर अपना रंग चढ़ाकर उन्हें अपनी भाषा में अपनाया। 'हेरोडोटस' ने भी (ईसा से चार शताब्दि पूर्व) कुछ कहानियाँ लिखी थीं। उसके बाद 'थियोक्राइटस', 'लूसियन', 'हेलिओडरस' आदि, विद्वानों ने कथा-साहित्य का भंडार बढ़ाया।

लैटिन भाषा की सब से पहली रचना, जो अंग्रेजी में 'गोल्डेन ऐस' के नाम से अनूदित हुई है, सम्भवतः मौलिक नहीं थी। उसका रचयिता ग्रीक कथाकार 'ऐप्यूलिअस' बताया जाता है। 'पेट्रोनिअस' की रचनाएँ भी संदेह से परे नहीं हैं। ईसा की चौथी शताब्दि में 'पैलेडियस' और 'सिनेसियस' नाम के लैटिन कथाकार हुए।

ईसाइयों के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ओल्ड ऐंड न्यू टेस्टामेन्ट' में भी कथा-साहित्य का सुन्दर संग्रह है।

मिश्र की सबसे प्राचीन गाथाएँ पत्थरों पर लिखी मिलती हैं। उन्हें देखकर कहानी-कला के 'क-ख-ग' का परिचय मिलता है।

इधर भारतवर्ष में भी कथाओं का महत्व बढ़ रहा था। ग्यारहवीं शताब्दि में 'कथा-सरित्सागर' की रचना हुई। इससे पहले 'वृहत्कथा मंजरी' प्रकाशित हो चुकी थी। इन दोनों ग्रन्थों की रचना पैशाची भाषा की 'वृहत्कथा' के आधार पर हुई थी। 'हितोपदेश' की रचना चौदहवीं शताब्दि के पूर्व ही हुई, यह निश्चय है। 'सिंहासन द्वात्रिंशत्पुत्तलिका' और 'दश कुमार-चरित' संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध कथा-ग्रन्थ हैं, जिनका संसार की सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

कुछ लोगों का मत है कि मध्य एशिया की सब जातियों के कथा साहित्य पर भारत की प्राचीन आख्यायिकाओं की छाप स्पष्ट है। कुछ विद्वान फारसी की 'सिंदबाद जहाजी' की कथा की मूल भित्ति 'बिन्दक जातक-कथा' मानते हैं। संस्कृत-साहित्य की 'पंचतंत्र' आदि कथाओं का अरबी और फारसी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ। 'सहस्र रजनी-चरित' के रचना संगठन में 'वृहत्कथा' की झलक मिलती है।

आरम्भ में नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए कथाएँ लिखी जाती थीं। धीरे-धीरे यात्रा, साहस-कार्य, छल-प्रपंच, किस प्रकार लौकिक विजय प्राप्त करना ऐसी शिक्षा देने वाली कथाएँ लिखी जाने लगीं।

आधुनिक कहानियों की रूप-रेखा बनाने में फ्रेंच और रूसी साहित्य को बहुत श्रेय है।

चौदहवीं शताब्दि के मध्य में इटली के 'जिओवैन्नी बोकेशियो'

ने कुछ कहानियाँ लिखीं। पश्चिम में वह अर्वाचीन कहानियों का पिता माना जाता है। उसकी कहानियाँ जीवन-चरित-श्रेणी के एक छोटे उपन्यास का आकार धारण कर लेती हैं। रचना-संगठन की दृष्टि से उनमें कहानी की उस रूप-रेखा का अंकुर मात्र दिखाई पड़ता है, जो बीसवीं शताब्दि में प्रस्फुटित और पल्लवित हुआ।

फ्रांस में अभी तक पुराने ढंग की कहानियों का बोलबाला था। 'बोकेशियो' तथा अन्य इटालियन कथाकारों की रचनाएँ, अनुवाद द्वारा फ्रेंच में पहुँचीं; लेकिन उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

इंगलैण्ड में लैटिन और इटालियन कहानियों का धड़ाधड़ अनुवाद हो रहा था। जिसके बाद ही आगे चलकर अंग्रेजी में मौलिक कथा-साहित्य का प्रसार हुआ।

अमेरिकन कहानियों का जन्म उन्हीं देशों के संसर्ग से हुआ जिन देशों के मनुष्य अमेरिका में जाकर बसे।

सत्रहवीं शताब्दि के स्पेनिश कथा-साहित्य में 'डॉन क्विज़ोटी' की खूब धूम रही। इसके ओजपूर्ण चरित्र-चित्रण का प्रायः सभी समकालीन कथानकों पर प्रभाव पड़ा।

अठारहवीं शताब्दि में जर्मनी के 'जो हैन पौल रिशटर' की रोमांटिक कहानियों ने सारे युरोप में उथल-पुथल मचाई।

फ्रेंच कथा-साहित्य भी आगे बढ़ रहा था। 'वोल्तेर' और 'आलिक ज़ाँद्र ड्यूमा' ने एक प्रकार से रोमांटिक युग की रचना की। 'बालज़ाक' की कहानियाँ कला की दृष्टि से सुन्दर बन

पड़ी हैं। १९ वीं शताब्दि के मध्यकाल में 'एमिल ज़ोला' और 'गी-द-मोपासाँ' ने यथार्थवाद का आन्दोलन चलाया। रचना-संगठन की दृष्टि से 'मोपासाँ' की कहानियाँ आज भी पथ-प्रदर्शक हैं।

रूसी कथा-साहित्य का विकास विलम्ब से हुआ; परन्तु वह इतने प्रचण्ड वेग से आगे बढ़ा कि थोड़े ही समय में विश्व-कथा-साहित्य में उसका सम्मानित स्थान हो गया। 'आइवैन-तुर्गनीव' ने अधिकतर उपन्यास ही लिखे हैं; लेकिन उसकी जितनी कहानियाँ हैं, वे कला की दृष्टि से अद्वितीय हैं। 'ऐन्टन-चेखोव' ने कहानी-साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया। कुछ लोगों का मत है कि कहानी के रचना-संगठन में उसे आदर्श मानना चाहिये।

× × × ×

चौदहवीं शताब्दि के बाद भारतीय कथा-साहित्य की स्वाभाविक प्रगति लगभग रुक गई।

अपभ्रंश भाषाओं में सम्भवतः कुछ कहानियाँ मिलें; किंतु हिंदी कहानियों का सूत्रपात संस्कृत-कथा-साहित्य के अनुवाद से हुआ।

इंशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' सम्भवतः हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है। इसका आरंभ इस प्रकार होता है—

"यह वह कहानी है कि जिसमें हिन्दी छुट।
और न किसी बोली का मेल है न पुट॥

सिर झुका कर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया। आतियाँ जातियाँ जो साँसे हैं।

उसके बिन ध्यान यह सब फाँसे हैं। यह कल का पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रखे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़ुआ कसैला क्यों हो उस फल की मिठाई चक्खे जो बड़ों से बड़े अगलों ने चक्खी है।

दोहा

देखने को दो आँखें दीं और सुनने को दो कान।
नाक भी सब में ऊँची कर दी मरतों को जी दान॥

मिट्टी के बासन को इतनी सकत कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके। सच है जो बनाया हुआ हो सो अपने बनानेवाले को क्या सराहै और क्या कहै, यों जिसका जी चाहे पड़ा बके। सिर से लगा पाँव तक जितने रोंगटे हैं, जो सबके सब बोल उठें और सराहा करें और उतने बरसों उसी ध्यान में रहें जितनी सारी नदियों में रेत और फूल फलियाँ खेत में हैं तौ भी कुछ न हो सके, कराहा करें।"

उन्नीसवीं शताब्दि के तृतीय चरण में राजा शिवप्रसाद का 'राजा भोज का सपना' प्रकाशित हुआ, जिसके आरंभ का अंश इस प्रकार है—

"वह कौनसा मनुष्य है जिसने महा प्रतापी राजा महाराज भोज-का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत में व्याप रही है। बड़े बड़े महिपाल उसका नाम सुनतेही काँप उठते थे और बड़े बड़े भूपति उसके पांव में अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना उसका सोने चांदी और रत्नों की खान से भी दूना। दान में राजा करणको लोगोंके जीसे भुला दिया था और न्याय में विक्रम को भी शर्मा लिया था। कोई उसके राज भर में भूखा न सोता और न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू मांगने आता उसे मोतीचूर मिलता और जो गजी चाहता उसे मलमल दिया जाता। पैसे की जगह लोगों को अशरफियाँ बाँटता

और मेह की तरह फकीरों पर मोती बरसाता। एक एक श्लोक के लिये ब्राह्मणों को लाख लाख रुपया उठा देता और एक एक दिन में लाख लाख गौदान दे डालता। सवा लक्ष ब्राह्मणों को षटरस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता। तीर्थयात्रा, स्नान, दान और व्रत उपवास में सदा तत्पर रहता। बड़े बड़े चांद्रायण किये थे और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान डाले थे।"

उन्नीसवीं शताब्दि के चतुर्थ चरण के आरंभ में भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' के आरंभिक अंश का उदाहरण यहाँ पर दिया जा रहा है; यह कहानी भारतेंदुजी पूरी नहीं लिख सके थे। उनके जीवन में यह अधूरी रह गई थी।

"ज़मीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या ?
बदलता है रंग आसमाँ कैसे कैसे ॥

हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पढ़े चलिए, जी बहलाने से काम है। अभी मैं इतनाही कहता हूँ कि मेरा जनम जिस तिथि को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है। सम्वत १९३० में मैं जब तेईस बरस का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसन्त ऋतु, हवा ठढी चलती थी; साँझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य्य, पर दोनों लाल लाल अजब समा बँधा हुआ, कसेरू, गँडेरी और फूल बेंचने वाले सड़क पर पुकार रहे थे। मैं भी जवानी की उमंगों में चूर, जमाने के ऊँच नीच से बेखबर, अपने रसिकाई के नसे में मस्त, दुनिया के मुफ्तखोरे सिफारशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भली-भाँति पहिचानता था।

कोई कहता था आप से सुन्दर संसार में नहीं, कोई कसमें खाता था, आप सा पण्डित मैंने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था चमेली जान आप पर मरती हैं, आपके देखे बिना तड़प रही हैं, कोई बोला हाय ! आपका फलाना कवित्त पढ़कर रात भर रोते रहे, दूसरे ने कहा आपकी फलानी गज़ल कल लाला रामदास की सैर में जिस वक्त प्यारी ने गाई सारी मजलिस लोट पोट हो गई, तीसरा ठण्डी साँस भरकर बोला धन्य है आप भी गनीमत हैं बस क्या कहें कोई जी से पूछे, चौथा बोला आपकी अँगूठी का पन्ना क्या है काँच का टुकड़ा है या कोई ताजी तोड़ी हुई पत्ती है, एक मीर साहब चिड़िया वाले ने चोंच खोली, वे पर की उड़ाई बोले कि आपके कबूतर किस से कम हैं वल्लाह कबूतर नहीं परीज़ाद हैं, खिलौने हैं, तसवीर हैं, हुमा पर साया पड़े तो उसे शहबाज बना दें, ऐसे ही खूबसूरत जानवरों में ईसाई लोग खुदा का नूर उतरना मानते हैं।"

युरोप की भाषाओं में जब कहानी-साहित्य का तीव्र गति से विकास हो रहा था, हिन्दी कहानियों का पता भी नहीं था। इसका कारण देश की सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक परिस्थितियों में निहित है।

बीसवीं शताब्दि के आरम्भ में बंगला और अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद होने लगे। देश में चेतना की लहर उठ रही थी। कहानी-साहित्य में भी इसके लक्षण दिखाई पड़ने लगे।

श्रीयुत किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने समय में कुछ अच्छी कहानियाँ लिखीं। यहाँ पर हम उनकी कहानी के आरम्भ का अंश देते हैं, इससे उनकी कहानियों के रचना-संगठन का आभास मिलेगा।

गङ्गा के दहिने किनारे पर मुङ्गेर बसा हुआ है। तीर से थोड़ी ही दूर पर मुङ्गेर का किला अब टूटा फूटा बेमरम्मत उजाड़ सा पड़ा है। किले के सामने 'कष्टहारिणी' घाट है। इस घाट के पास अब तक एक सुरङ्ग देख पड़ती है; पर वह कहां तक गई है, या उसके भीतर से कहां कहां राह गई हैं, इसका पता बहुत ही कम लोग जानते या नहीं ही जानते होंगे। हम इस छोटे से उपन्यास में जिस ऐतिहासिक घटना का वर्णन करेंगे, उससे इस सुरङ्ग का विशेष सम्बन्ध है, इसलिये पाठक लोग सुरङ्ग को याद रक्खें।

('गुलबहार'—१९०३ ई०)

पार्वतीनन्दन के नाम से श्री गिरिजाकुमार घोष ने छायानुवादों से हिन्दी कहानी-साहित्य की ओर लोगों को आकर्षित किया। उनकी 'भूतौंवाली हवेली' नामक प्रसिद्ध कहानी से एक अंश—

"अच्छा, तो सुनिए। जब सन् १८—में—को मेरी बदली हुई तब मैं अपने एक नौकर ही को लेकर वहां चला गया। पहले तो मैं धर्म्मशाला में जाकर टिका, फिर रहने के लिये एक मकान ढूँढने लगा। परन्तु दैव की इच्छा कुछ समझ में नहीं आती; एक ही वर्ष के भीतर चार बार मेरी बदली हुई, और जहां-जहां मैं गया, वहां-वहां सब कहीं मकान के लिए मुझे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। इस कारण अपने एक विश्वासी पुराने नौकर को छोड़ कभी किसी आत्मीय को अपने साथ रखने का सुविधा न हुआ। इस बार भी उसी अचिन्तनीय दैवी नियम के अनुसार घर के लिए मुझे गली गली छानना पड़ा। दो दिन तक घूमते-घूमते मैं थक गया। निदान तीसरे दिन मुझे पता लगा कि अमुक गली में एक मकान खाली है; पर उसमें कोई कभी नहीं रहता; फाटक में सदा ताला लगा रहता है। जब मैं वहां गया तब वास्तव में द्वार मैंने बन्द पाया। आस पास कोई पड़ोसी भी नहीं देख पड़ा कि जिससे उस घर के स्वामी का पता मैं पूंछता। थोड़ा समय

योंही सोच विचार में गया। मैं निराश होकर लौटही आने पर था कि एक मेहतर का लड़का उस ओर आ निकला। उसने मुझे द्वार पर खड़ा देख कर पूछा, "क्या आप इस मकान का हाल पूछते हैं?" मैंने कहा हां, मैंने सुना है कि यह किराए पर देने के लिए है।

"किराए पर ! आप इसे किराए पर लेना चाहते हैं ! अजी इसमें कोई नहीं रह सकता। और की कौन कहै, लाला जी ने मेरी अम्मा को एक दिन एक रुपया तक देने कहा था कि कभी कभी तू भीतर झाड़ू लगा दिया कर; पर वह उस पर भी राजी नहीं हुई।"

(रचनाकाल—१९०३ ई०)

इन रचनाओं से ज्ञात होता है कि उस समय आधुनिक कहानियों के आकार-प्रकार और उसकी रूप-रेखा की धुंधली आकृति दिखाई पड़ने लगी थी। कहानियों में शिक्षा का सामञ्जस्य किस प्रकार होना चाहिए, इसके बारे में कोई निश्चित नियम नहीं बन पाया था।

१९११ ई० में प्रसादजी की पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उसके बाद हिन्दी-साहित्य में एक प्रकार से कहानियों का युग आरम्भ हुआ। प्रेमचन्दजी अपनी सीधी और सरल भाषा के कारण सर्वप्रिय हो गये। कौशिकजी, ज्वालादत्तजी और सुदर्शनजी की कहानियों की खूब ख्याति हुई।

बीसवीं शताब्दि की तीसरी दशाब्दि में युरोप की तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के अनुवाद हिन्दी में प्रतिदिन बढ़ने लगे। मौलिक कहानी-साहित्य का भी खूब विस्तार हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि जो हिन्दी कहानियाँ अन्य देशों की तुलना में दो तीन शताब्दि पीछे रह गईं, अब कुछ ही वर्षों में अपना पिछड़ा

हुआ मार्ग तय करके, स्पर्द्धा के साथ विश्व-कथा-साहित्य की अगली पंक्ति में आ बैठेंगी।

टेकनिक की दृष्टि से प्रसादजी की कहानियों का हिन्दी में अधिक महत्व है। उनकी आँधी, घीसू, मधुआ ,बिसाती, पुरस्कार आदि कहानियाँ बहुत उत्कृष्ट बन पड़ी हैं।

× × × ×

इधर एक शताब्दि में कहानियों की रूप-रेखा में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए हैं। प्राचीन कहानियों में जो उपदेशात्मक और निर्णयात्मक प्रवृत्ति थी, उसके स्थान पर विश्लेषणात्मक और शोधनात्मक भावना प्रधान हो गई है। आधुनिक कहानियों का ध्येय है, मनुष्य के मनोरहस्यों का उद्घाटन करना, उनमें अनियंत्रित और अप्रासंगिक भावुकता के प्रदर्शन का अवकाश नहीं।

अब 'प्यारे पाठकों' तथा अन्य ऐसे सम्बोधनों से कहानियों का आरम्भ नहीं होता। इस तरह भी अब नहीं लिखा जाता—"हाय मालती तुम्हारी क्या दशा हो गई ?" अथवा "अहा कैसी मनोरम संध्या है !"

आजकल वही कहानियाँ सफल समझी जाती हैं, जिनमें कहानी-लेखक निर्लिप्त भाव से एक ऐसी दुनिया की सृष्टि कर दे जो वास्तविक जगत से परे न हो। पाठक यह न अनुभव करें कि कोई कहानी कह रहा है, बल्कि वे अपने को उस दर्शक की स्थिति में समझें, जिसके सामने रंग-मंच के दृश्यों के समान कहानी-घटनाएँ स्वतः घटती जाती हैं। कहानी में इतनी शक्ति

होनी चाहिए कि थोड़ी देर के लिए पाठक सब कुछ भूलकर उसके पात्रों की भावनाओं के साथ बहने लगें।

कहानी-लेखक की कुशलता तभी है, जब वह अपनी इच्छा-नुकूल पाठकों में वही भावनाएँ संचारित कर दे जो कहानी की रचना के समय उसके अन्तस्तल में आन्दोलित हो रही थीं।

साधारणतया कहानियाँ ऐसी होनी चाहिएँ, जो एक ही बैठक में, अधिक से अधिक एक घण्टे में, पढ़ी जा सकें।

कहानी और उपन्यास में आकार के अलावा विषय में भी भेद है। कहानी में किसी भावना विशेष का चित्रण रहता है। उपन्यास का 'कन्वास' विस्तृत है। उसमें सम्पूर्ण जीवन की विविधता का चित्र उतारा जा सकता है।

इधर के कुछ नवीनतम उपन्यासों का विस्तार लम्बी कहानियों से कुछ ही अधिक होता है। लेकिन उनमें भी दृष्टिकोण का अन्तर रहता है। कहानी में जब कि जीवन के किसी अंश का—अवस्था विशेष का—चित्रण रहता है; उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन की आलोचना रहती है।

कहानी और शब्द-चित्र में थोड़ा अन्तर है। शब्द-चित्र में किसी विशेष मानसिक अवस्था का चित्र मिलता है, कहानी का एक आवश्यक गुण उसका नाटकीय ढंग का प्लाट है।

कुछ लोग कहानी में प्लाट को विशेष महत्व देते हैं। प्लाट उन घटनाओं के समूह का नाम है जो अपने में सम्पूर्ण है और सम्मिलित रूप में उनका एक निश्चित अर्थ है।

कहानी में किसी अनावश्यक प्रसंग की गुंजाइश नहीं है। उसका प्रत्येक चरण उसके प्रधान उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में होना चाहिए। घटनाओं का प्रवाह कुछ ऐसा हो कि पाठक की उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती जाय, क्लाइमेक्स पर तीव्रतम स्थिति और इसके बाद शीघ्र से शीघ्र कहानी का अन्त।

कहानी की विविध घटनाओं का प्रभाव केन्द्रित करने के लिए निम्न नियम उपयोगी सिद्ध हुए हैं—

१—जहाँ तक बन सके कहानी का घटना-स्थल अपरिवर्त्तनशील रहे। (स्थानान्वय)।

२—विविध घटनाओं में दीर्घ समय का अन्तर न हो। (समयान्वय)।

३—घटनाओं में तारतम्य का ध्यान रखा जाय (कार्यान्वय)।

कहानी जितनी विविध घटना-स्थलों पर फैलाई जायगी उतने ही स्थलों पर उसके स्वाभाविक क्रम-विकास में बाधा पड़ती है। इसी प्रकार घटनाओं में दीर्घ समय का अन्तर होने पर भी कहानी की 'लिङ्क' टूट जाती है।

रचना-संगठन की दृष्टि से सम्पूर्ण कहानी को दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं—

१—वार्तालाप विभाग।

२—वर्णनात्मक विभाग।

कहानी में वार्तालाप का प्रयोग अधिकतर चरित्रों के मनोभावों को स्पष्ट करने के लिए होता है। इसके सिवा घटनाओं

को गतिशील बनाने में भी सहायता मिलती है। कभी-कभी प्लाट के प्रस्तावना भाग की सामग्री का अंश भी वार्तालाप द्वारा उपस्थित किया जाता है।

अधिकांशतः प्लाट और चरित्र-चित्रण की सामग्री को कहानी में प्रस्तुत करने का भार वर्णनात्मक विभाग पर रहता है। कहानी का वर्णनात्मक विभाग ओज पूर्ण होना चाहिए। भाषा और शैली पर भी ध्यान रखने की आवश्यकता है।

अब हम आगे के अध्यायों में कहानी के विभिन्न अंगों की विशद रूप से विवेचना करेंगे। कहानी में प्लाट की कल्पना सब से पहले की जाती है, इसलिए इसका उल्लेख पहले अध्याय में होगा। प्लाट के बाद रचना-क्रम का अध्याय है क्योंकि टेकनिक की दृष्टि से इन दोनों में निकट सम्बन्ध है। इसके बाद के अध्यायों में क्रमशः शीर्षक, आरम्भ और अन्त, चरित्र-चित्रण, वार्तालाप तथा भाषा-शैली पर विचार किया गया है।

नोट—इस अध्याय में सत्रहवीं शताब्दि, अठारहवीं शताब्दि आदि का तात्पर्य ईसवी शताब्दि से है।

प्लाट

कहानियों में प्लाट का वही महत्व है जो शरीर में हड्डियों का। भाव, भाषा, शैली, चरित्र-चित्रण सब कुछ हो; लेकिन अच्छे प्लाट के बिना कहानी नीरस रहती है।

प्लाट क्या है? पहले इसे समझ लेना आवश्यक है। किसी वस्तु-स्थिति अथवा दृश्य विशेष को ही प्लाट मान लेना भूल होगी। ये प्लाट के अंश हैं, प्लाट नहीं।

वस्तु-स्थिति—

श्रीकंठसिंह और लालबिहारीसिंह, दोनो भाई साथ साथ रहते थे। एक साधारण घटना पर श्रीकंठसिंह घर से अलग होने का निश्चय कर लेते हैं। लालबिहारीसिंह जब यह सुनता है तो खुद घर से चले जाने के लिये तैयार हो जाता है। भाभी के द्वार पर आकर कहता है—भाभी, भय्या ने निश्चय किया है कि वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। वह मेरा मुंह अब नहीं देखना चाहते। इसलिए मैं ही अब जाता हूँ, उन्हें फिर मुंह न दिखाऊँगा। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ उसे क्षमा करना।

('बड़े घर की बेटी'—प्रेमचन्द)

दृश्य विशेष—

मिर्ज़ा साहब और मीर साहब शतरंज खेलते-खेलते तलवारें निकाल लेते हैं। मिर्ज़ा—अरे चल चरकटे, किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये, आप शतरंज क्या खेलियेगा। मीर—क्या? घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहां तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आते हैं। मिर्ज़ा—अजी, जाइये भी, गाज़ीउद्दीन हैदर के यहां बावर्ची का काम करते-करते उम्र गुज़र गई आज रईस बनने चले हैं। इस पर मीर साहब ज़बान सम्हालने के लिये कहते हैं, क्योंकि वह ऐसी वैसी बात सुनने के आदी नहीं; किसी ने आँखें दिखाई कि उसकी आँखें निकाल लीं। है हौसला? मिर्ज़ा साहब भी उसी स्वर में कहते हैं—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं? तो फिर आइये, आज दो दो हाथ हो जाय—इधर या—उधर।

('शतरंज के खिलाड़ी'—प्रेमचन्द)

ऊपर दिये गये दोनों उदाहरणों में प्लाट के आवश्यक गुण नहीं हैं। लेकिन थोड़े परिश्रम से इनके आधार पर सुन्दर प्लाट तैयार हो सकते हैं। जैसे—

वस्तु-स्थिति वाला उदाहरण—इतना अंश 'क्लाईमेक्स' के काम आयेगा। इसके पहिले घटना का कारण दिखाना चाहिये। श्रीकंठसिंह और लालबिहारीसिंह दोनो के स्वभाव का कुछ वर्णन। एक दिन आनन्दी भोजन बनाकर राह देख रही थी। लालबिहारी खाने बैठा तो दाल में घी नहीं। लालबिहारी बोला—अभी परसों

घी आया था, इतनी जल्दी उठ गया, (तमक कर) मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो। बड़े घर की बेटी आनन्दी मुँह फेर कर जवाब देती है—हाथी मरा भी तो नौ लाख का, वहाँ इतना घी, नित्य नाई, कहार पी जाते हैं। लालबिहारी—अपढ़, उजड्ड ठाकुर—क्रोध में उबलकर खड़ाऊँ फेंककर मारता है। आनन्दी रोकर सब बातें पति से कहती है। श्रीकंठ रात भर करवटें बदलते रहे, क्योंकि जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा के लिए वह ईश्वर के दरबार में उत्तर दाता हैं, उसके साथ ऐसा घोर पशुवत् व्यवहार उन्हें असह्य था। इसके बाद कहानी का अन्त इस प्रकार—लालबिहारी को सिर झुकाये पश्चात्ताप-मुद्रा में देखकर आनन्दी का मन पिघल जाता है। वह कहती है—तुम्हें मेरी सौगन्द जो एक पग भी आगे बढ़ाया।

दृश्य विशेष वाला उदाहरण—इस दृश्य से मिर्ज़ा साहब और मीर साहब की मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। इसको प्लाट का रूप देने के लिए उनके चरित्रों की 'बैकग्राउन्ड' दिखानी होगी। इसके बाद, इसी आधार के अन्य दृश्यों को जोड़कर अपना आशय व्यक्त किया जा सकता है।

प्लाट, वस्तु-स्थिति और दृश्य विशेष के बीच जो अन्तर है, इसको समझने में गड़बड़ी इसलिए भी हो जाती है कि ये सब एक ही जाति के हैं। अगर प्लाट को उसकी पूर्णता की अवस्था के अनुसार श्रेणियों में विभक्त किया जाय तो दृश्य विशेष और वस्तु-स्थिति भी उसके विकास-क्रम का एक अंश होगा।

कुछ लोगों का मत है कि प्लाट का निर्माण एकांकीय नाटक के अनुकरण पर होना चाहिए। दूसरी परिभाषा के अनुसार, प्लाट केवल ऐसी घटनाओं का संग्रह है जो सम्मिलित रूप में लेखक का कोई निश्चित मन्तव्य व्यक्त करने की क्षमता रखती हों।

नाटकीय प्लाट की सृष्टि निम्नलिखित धारणाओं पर अवलंबित है।

(१) कोई एक अथवा कई पात्र।

(२) इन पात्रों का अपने स्वभाव के अनुकूल अथवा उसके प्रतिकूल आचरण।

(३) घटनाएँ।

(४) इन घटनाओं का विकास, (क) पात्र के अन्तर तथा वाह्य परिस्थितियों पर, (ख) उसके संसर्ग में आनेवाली शक्तियों पर निर्भर होगा।

(५) संसर्ग में आनेवाली घटनाओं के साथ पात्र का संघर्षण। इसीको नाटकीय परिस्थिति कहते हैं।

(६) परिणाम। संसर्ग में आनेवाली शक्तियों का पात्र पर क्या प्रभाव पड़ा। वह उनके सम्मुख झुका अथवा नहीं।

प्लाट की रचना सदैव वैज्ञानिक क्रम से होनी चाहिए। घटनाओं से पहले उनके कारणों का उल्लेख करना चाहिए। पात्र के कार्यों का विवरण देने से पहले उनका मन्तव्य स्पष्ट करना होगा।

आँधी एकाएक नहीं आती। पहले तेज हवा, साथ ही पीला, भूरा आकाश, वृक्षों का हर-हर, दूर बिजली की चमक—कोलाहल उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ। प्लाट का विकास भी कुछ इसी क्रम से होना

चाहिए—प्रतिक्षण पाठकों की उत्सुकता बढ़ती जाय, क्लाईमेक्स पर तीव्रतम परिस्थिति, इसके बाद जल्दी से जल्दी अन्त।

अध्ययनशील पाठकों के लिए यहाँ पर प्रसाद जी की 'गुंडा' कहानी का प्लाट बनाकर दिया जाता है।

प्लाट की 'थीम' अथवा मन्तव्य—

अठारहवीं ई० शताब्दि का अंतिम भाग। उस समय समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्र-बल के सामने झुकते देख कर, काशी के विच्छिन्न और निराश नागरिक जीवन ने, एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि की। वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मिटना, सिंहवृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरों तथा चोट खा कर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न ऊठाना, सताये हुए निर्बलों को सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए घूमना, उनका बाना था। उन्हें लोग काशी में गुंडा कहते थे।

प्रस्तावना-भाग—कहानी में दो पात्र हैं।

(१) राजमाता पन्ना—युवक राजा चेतसिंह की विधवा माता। ज़मींदार की पुत्री। आरम्भ में ब्याह की चर्चा नन्हकूसिंह से हुई, किन्तु राजा बलवन्तसिंह द्वारा बलपूर्वक रानी बना ली गई। अन्तःपुर कलह का रंगमंच बना रहता, इसी से प्रायः पन्ना काशी के राज-मंदिर में आकर पूजापाठ में मन लगातीं, असवर्णता का सामाजिक दोष उनके हृदय को व्यथित किया करता।

(२) नन्हकूसिंह एक प्रतिष्ठित ज़मींदार का पुत्र। अत्याचारी बलवन्तसिंह द्वारा पन्ना के रानी बनाये जाने पर चिरकुमार रहने

की प्रतिज्ञा की तथा गुंडा बन गया। उसकी अवस्था पचास वर्ष से ऊपर थी। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ट था। उसकी चढ़ी मूँछें बिच्छू के डंक की तरह, देखनेवालों की आँखों में चुभतीं थीं। उसका साँवला रंग, साँप की तरह चिकना और चमकीला था।

चारित्रिक विशेषताएँ—निर्भीक, उच्छृङ्खल, अपनी बात पर अड़जाने वाला, वेश्याओं के गीत तमोली की दुकान पर बैठ कर सुनता, कभी ऊपर नहीं जाता था।

परिवर्त्तन की स्थिति—नन्हकूसिंह दुलारी से गाना सुन रहा था। उसी समय कुबरा मौलवी ने, रेजिडेण्ट साहब की कोठी पर मुजरा करने के लिए दुलारी को बुलवाया। नन्हकूसिंह ने कहा-गाओ! हमने ऐसे घसियारे बहुत देखे हैं। कुबरा मौलवी ने घूम कर कहा—कौन है यह पाजी! 'तुम्हारे चचा बाबू नन्हकूसिंह।' के साथ ही पूरा बनारसी झापड़ पड़ा। कुबरा का सिर घूम गया।

मुख्यांश—

(१) दूसरे दिन राजा चेतसिंह के पास रेजिडेण्ट की चिट्ठी आई, जिसमें नगर की दुर्व्यवस्था की कड़ी आलोचना थी। कुबरा मौलवी वाली घटना का भी उल्लेख था।

(२) नन्हकूसिंह ने दुलारी से पूछा—कोई नई बात इधर हुई है क्या? दुलारी—कोई हेस्टिंग्ज़ साहब आया है। सुना है कि उसने शिवालयघाट पर तिलंगों की कम्पनी का पहरा बैठा दिया है। राजा चेतसिंह और राजमाता पन्ना वहीं हैं। कोई कोई कहता है कि उनको पकड़ कर कलकत्ता भेज देंगे। नन्हकू का

मुख भयानक हो उठा।—पन्ना! उसे पकड़ कर गोरे कलकत्ते भेज देंगे!

(३) नगर में आतंक छाया है। भय और सन्नाटे का राज्य था। चौक में चिथरूसिंह की हवेली अपने भीतर काशी की वीरता को वन्द किये कोतवाली का अभिनय कर रही थी। नन्हकू ने अपने थोड़े से साथियों को फाटक पर गड़वड़ मचाने के लिए भेज दिया। इधर अपनी डोंगी लेकर शिवालय की खिड़की के नीचे धारा काटता हुआ पहुँचा।

(४) राज परिवार मंत्रणा में डूबा था। राजमाता पन्ना और युवक राजा चेतसिंह से बाबू मनिहारसिंह कह रहे थे—आप के यहाँ रहने से, हम लोग क्या करें यह समझ में नहीं आता। पूजा-पाठ करके आप रामनगर चली गई होतीं!

(५) किसी तरह निकले हुए पत्थर में डोंगी अटका कर, नन्हकूसिंह बन्दर की तरह उछल कर भीतर पहुँचता है। जैसे सब को सचेत करते हुए कहा—महारानी कहाँ हैं? उन्हें डोंगी पर बैठाइये। नीचे अच्छे मल्लाह तैयार हैं। इतने वर्षों बाद नन्हकू-सिंह को पहचान कर पन्ना के मुँह से हलकी सी एक साँस निकल कर रह गई। 'और···'—चेतसिंह को देखकर, पुत्र-वत्सला पन्ना ने संकेत से एक प्रश्न किया। नन्हकू ने हँसकर कहा—मेरे मालिक, आप नाव पर बैठें। जब तक राजा भी नाव पर न बैठ जाँयगे, तब तक सत्रह गोली खाकर भी नन्हकूसिंह जीवित रहने की प्रतिज्ञा करता है।

(६) चेतराम ने आकर लेफ्टिनेन्ट की एक चिट्ठी दी, जिस में लिखा था कि सिपाहियों को गोली चलाने से अब नहीं रोका जा सकता, क्योंकि आदमी गड़बड़ मचा रहे हैं। उधर फाटक बल-पूर्वक खोला जा रहा था।

क्लाइमेक्स—

पन्ना डोंगी पर बैठ गई थी। राजा चेतसिंह को गिरफ्तार करने की कोशिश की गई, जिस पर तलवारें खिंच गईं। नन्हकू-सिंह ने ललकार कर चेतसिंह से कहा—क्या आप देखते हैं? उतरिये डोंगी पर। नन्हकूसिंह के घावों से रक्त के फुहारे छूटने लगे थे। बीसों तिलंगों की संगीनों में वह अविचल खड़ा होकर तलवार चला रहा था।

अन्त—

खिड़की से उतरे हुए राजा चेतसिंह ने देखा—नन्हकू के चट्टान सदृश्य शरीर से गैरिक की तरह रक्त की धारा बह रही है। उसका एक एक अंग कटकर वहीं गिरने लगा।

प्लाट के रचना-क्रम के अनुसार उसको इतने भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) प्रस्तावना भाग। (२) मुख्यांश।
(३) क्लाइमेक्स। (४) पृष्ठ भाग।

प्रस्तावना भाग में कहानी के मुख्य पात्रों का तथा उनकी परि-स्थिति का परिचय दे दिया जाता है। साथ ही कहानी की प्रधान घटना का भी आभास मिलता है। परिवर्त्तन की स्थिति से मुख्यांश

आरम्भ होता है। यहाँ से कहानी उत्तरोत्तर तीव्र होती जाती है। शीघ्र ही ऐसी स्थिति आती है, जहाँ से घटनाओं का एक निश्चित क्रम हो जाना चाहिए। इसी स्थल को क्लाइमेक्स कहते हैं। इसके बाद पृष्ठ भाग में कहानी का अन्त दिखाया जाता है।

(१) प्रस्तावना भाग—

प्रस्तावना भाग खूब संक्षिप्त होना चाहिए; क्योंकि क्रियात्मक-रूप में कहानी मुख्यांश से ही आरम्भ होती है। इससे पहले का अंश केवल परिवर्त्तन की स्थिति को समझाने के लिए रहता है। इसके आगे उसका कोई महत्व नहीं।

साधारणतया प्रस्तावना भाग में इन इन बातों का उल्लेख हो जाना चाहिए।

(क) व्यक्तिगत परिचय—कुछ शब्दों में पात्र का नाम, उसकी आयु, जाति तथा अन्य बातों का विवरण, जिससे उसकी पूरी तसवीर आँखों के सामने खिंच जाय।

(ख) पात्र की चारित्रिक विशेषताएँ, जिनका प्लाट की घटनाओं से निकट सम्बन्ध हो—उसकी रुचि, उसकी कल्पनाएँ, उसके स्वप्न।

(ग) सांसारिक स्थिति—किस तरह जीविका चलती है? समाज में क्या स्थान है?

(घ) वातावरण—क्या समय है? क्या 'बैकग्राउन्ड' है?

(ङ) अन्य आवश्यक बातें।

प्लाट के प्रस्तावना भाग की सामग्री को कहानी में प्रस्तुत करने के लिए ये साधन हैं-(क)वर्णन द्वारा,(ख)वार्तालाप द्वारा,(ग)संकेत से।

आधुनिक कहानियाँ पहली ही लाइन में क्रियात्मक रूप से आरम्भ हो जाती हैं। प्रस्तावना भाग की सामग्री आवश्यकतानुसार घटनाओं के प्रवाह के साथ, संकेत से अथवा वार्तालाप द्वारा प्रकट होती रहती है।

कभी-कभी कुछ कहानियों में प्रस्तावना भाग के अंश को आरम्भ में देना ही ठीक होता है। कहानी में प्रस्तावना भाग का उल्लेख किस स्थान पर हो इसका निर्णय इन बातों पर निर्भर है— (क) कथा वस्तु किस प्रकार की है? (ख) लेखक का उद्देश्य क्या है? (ग) पाठक से उसका क्या सम्बन्ध है? (कहानी प्रथम पुरुष में है अथवा अन्य पुरुष में)

उदाहरण के लिए चरित्र प्रधान कहानियों में प्रस्तावना भाग का आरम्भ में ही उल्लेख कर देना अच्छा होता है।

(२) मुख्यांश—

परिवर्त्तन की स्थिति से कहानी क्रियात्मक रूप में आरम्भ हो जाती है। पात्रों के जीवन-चक्र के नियमित क्रम में कोई विघ्न आ पड़ता है, जिसे निकाल देना अथवा घुला-मिला लेना होगा। मुख्यांश से कहानी में तीव्र अथवा क्षीण रूप में एक संघर्षण आरम्भ हो जाता है, जो क्लाइमेक्स पर पहुँच कर उग्र रूप धारण कर लेता है।

मुख्यांश में इन बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है—

(क) संघर्षण का उद्गम स्वाभाविक ही नहीं, किन्तु अनिवार्य पड़े।

(ख) संघर्षण की धारा पात्रों की परिस्थिति तथा उनके चरित्रों के अनुकूल अग्रसर हो।

अगर संघर्षण का उद्गम अथवा उसकी प्रगति कृत्रिम जान पड़ती है तो कहानी पर पाठक का विश्वास न रहेगा।

कभी कभी असाधारण घटनाएँ जीवन में विकट परिवर्त्तन उपस्थित करती हैं। ऐसी असाधारण घटनाओं को जीवन-चक्र के नियमित क्रम में वाधा डालने का कारण दिखाने के लिए, असाधारण वातावरण भी तैयार कर लेना चाहिए, अन्यथा कहानी स्वाभाविक नहीं बन सकेगी।

परियों की और अन्य काल्पनिक कहानियों में इन सब नियमों के पालन करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पाठक आरम्भ से ही जान लेता है कि ये केवल कल्पनाएँ हैं। ऐसी कहानियों में विचार चमत्कार से पाठकों को मुग्ध रखा जाता है।

(३) क्लाइमेक्स—

क्लाइमेक्स के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ लोग इसकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं, कुछ लोग नहीं। यह निर्विवाद है कि क्लाइमेक्स से कहानी अधिक तीक्ष्ण बन जाती है। प्लाट का एक आवश्यक गुण संघर्षण है और संघर्षण के साथ तीव्रतम स्थिति अनिवार्य है, जहाँ से घटनाओं का एक निश्चित क्रम बन जाय।

क्लाइमेक्स के पहले का अंश लेखक तैयार करता है। इसके बाद कहानी अपने आप आगे बढ़ती है।

क्लाइमेक्स का निर्माण कैसे हो? इसके लिए कोई निश्चित

नियम नहीं बताया जा सकता। क्योंकि चरित्र-चित्रण भाषा-शैली, घटना-क्रम, वातावरण—कहानी के सभी उपादान क्लाइ-मेक्स की तैयारी में योग देते हैं।

क्लाइमेक्स का निर्माण करने के लिए घटनाओं का संयोजन दो प्रकार से हो सकता है—

(क) क्लाइमेक्स को सर्वोच्चशिखर मान लें और घटनाओं को उस शिखर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ। प्रत्येक पग पर प्लाट की रोचकता, घटनाओं की उलझन बढ़ती ही जानी चाहिए। इस तरह शिखर तक पहुँचने पर, तीव्रतम स्थिति और सबसे रोचक स्थल मिलेगा।

(ख) क्लाइमेक्स को आकर्षण केन्द्र और घटनाओं को उसकी परिधि पर स्थित विन्दु मान लें। प्रत्येक घटना अलक्ष्य रूप से आकर्षण केन्द्र को शक्ति प्रदान करती है। और शीघ्र ही एक ऐसा समय आता है, जब यह आकर्षण केन्द्र (क्लाइमेक्स) पाठकों को प्रकट हो जाता है। इस प्रकार के घटना क्रम में हर एक छोटी छोटी घटनाओं की अपनी विशेषता रहती है। क्लाइ-मेक्स बहुत अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है। हम प्रति क्षण सोचते हैं कि क्लाइमेक्स आने वाला है, फिर मानव स्वभाव के अनुकूल विचार उठता है—नहीं, ऐसा तो नहीं है।

कहानी में घटनाओं को सजाने का दूसरा क्रम पहले क्रम से अधिक स्वाभाविक है। पहले प्रकार के रचना-क्रम में, घटनाओं के चुनाव में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। घटनाएँ

ऐसी होनी चाहिएँ जो कहानी को एक पग आगे बढ़ाती रहें साथ ही उनका सूत्र भी अविच्छिन्न रहे।

(४) पृष्ठ भाग—

क्लाइमेक्स तक पहुँचते पहुँचते कहानी की एक निश्चित गति बन जाती है। लेखक की कुशलता इतनी ही है कि कहानी के वातावरण और चरित्रों तथा घटनाओं के विकास का ध्यान रखते हुए वह उसका स्वाभाविक क्रम से अन्त कर दे। कुछ ऐसी कहानियाँ होती हैं, जिनका अन्त निश्चित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए रहस्यमयी अथवा भावना प्रधान कहानियाँ।

आधुनिक ढंग की कहानियों का अन्त क्लाइमेक्स पर ही हो जाता है।

कभी कभी प्रश्न उठता है कि प्लाट की अमुक घटना अधिक रोचक है और अमुक कम ! बहुधा कहानियों में वादाविवाद भी आ जाता है। हम उस स्थल को छोड़ दें तब भी कहानी समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी।

कहानी में कोई घटना उतने ही अंशों में रोचक है, जितने अंश में वह कहानी को उसके अन्त की ओर बढ़ाने में सहायता देती है। इसके बाद कहानी-तत्व की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। प्लाट की घटनाओं का चुनाव करते समय यह बात सदैव ध्यान में रखना चाहिए। कहानी मस्तिष्क की नहीं; किन्तु हृदय की वस्तु है। लेखक का जो मन्तव्य है, उसे कहानियों में वादा-विवाद द्वारा नहीं, पात्रों के कार्यों द्वारा प्रत्यक्ष करना चाहिए।

रचना-क्रम

प्लाट और कहानी के रचना-क्रम में अन्तर है। प्लाट में घटनाओं का संयोजन तर्कानुसार होना चाहिए, लेकिन कहानी में इस नियम के पालन की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसमें तो प्रधान उद्देश्य भावनाओं को संचारित करना है और इसके लिए कभी कभी प्लाट का पृष्ठ भाग कहानी के आरम्भ में दे दिया जाता है।

उदाहरण—

यह कहानी सुनाने के पाँच महीने बाद, वह एक दिन वेश्याओं के मकानों में आग लगाते हुए, पकड़ा गया। इसके बाद वह पागलखाने भेज दिया गया।

('उसकी-कहानी')

प्लाट के पृष्ठ भाग को आरम्भ में ही उपस्थित करने के कारण कहानी के पहले पैरा से नाटकीय परिस्थिति की सृष्टि होती है, साथ ही कहानी की प्रमुख घटना और पात्र की चारित्रिक विशेषता का आभास मिलता है।

कहानियों में नाटकीय परिस्थिति का ध्यान पहले रखना चाहिए, इसके बाद अन्य बातों को। नाटकीय परिस्थिति का निर्माण करने के लिए अदैनिक घटनाओं की आवश्यकता नहीं। प्रतिदिन के जीवन

में जिन छोटी छोटी बातों पर ध्यान तक नहीं जाता, कुशल लेखक उन्हीं बातों में चमत्कार उत्पन्न कर देता है।

कभी कभी अच्छे प्लाट पर भी सुन्दर कहानी नहीं बन पाती। कहानी एक टेढ़ी-मेढ़ी गति से खिसकती हुई आगे बढ़ती है। कारण, लेखक प्लाट की सामग्री का कहानी में उचित उपयोग नहीं कर पाता।

कहानी नाटकीय-परिस्थिति से आरम्भ होकर प्रति पल आगे बढ़ती जानी चाहिए, बीच में किसी स्थल पर रुकने की आवश्यकता नहीं। प्लाट के प्रस्तावना भाग की सामग्री मुख्यांश की तुलना में कम रोमांचकारी होती है, लेकिन कुशल लेखक वहाँ भी अपनी रचना-चातुरी से कहानी का प्रभाव क्षीण नहीं होने देता। देखिए—

(क) सब्र करने पर भी वह नौ बजे नन्दू बाबू के कमरे में पहुँच ही जाता। नन्दू बाबू का भी वही समय था, बीन लेकर बैठने का। घीसू को देखते ही वह कह देते—"आ गये घीसू !"

"हाँ बाबू, गहरेबाजों ने बड़ी धूल उड़ाई—साफे का लोच आते-आते बिगड़ गया !"—कहते कहते वह प्रायः अपने जयपुरी गमछे को बड़ी मीठी आँखों से देखता। और, नन्दू बाबू उसके कन्धे तक बाल, छोटी-छोटी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी गुलाबी आँखों को स्नेह से देखते।

('घीसू'—प्रसाद)

(ख) विमलप्रकाश ने सेवाश्रम के द्वार पर पहुँच कर जेब से रूमाल निकाला और बालों पर पड़ी हुई गर्द साफ की, फिर उसी रूमाल से जूतों की गर्द साफ की और अन्दर दाखिल हुआ।

('रहस्य'—प्रेमचन्द)

(ग) रामनिहाल अपना बिखरा हुआ सामान बाँधने में लगा था।

जंगले से धूप आकर उसके छोटे से शीशे पर तड़प रही थी। अपना उज्ज्वल आलोक खण्ड, वह छोटा सा दर्पण बुद्ध की सुन्दर प्रतिमा को अर्पण कर रहा था। किन्तु प्रतिमा ध्यानामग्न थी। उसकी आँखें धूप से चौंधियाती न थीं। प्रतिमा का शान्त गम्भीर मुख और भी प्रसन्न हो रहा था। किन्तु रामनिहाल उधर न देखता था। उसके हाथों में था एक कागज़ों का बन्डल जिसे,सन्दूक में रखने से पहले वह खोलना चाहता था।

('सन्देह'—प्रसाद)

ऊपर दिये गये तीनों उदाहरणों में प्लाट के प्रस्तावना भाग की सामग्री है, लेकिन पात्रों की आन्तरिक भावनाओं से उसके विवरण का सामंजस्य हो जाने के कारण वह अलग की वस्तु नहीं मालुम पड़ती। 'क' और 'ख' उदाहरण में नन्दू तथा विमल-प्रकाश की आकृति का, और 'ग' में कमरे का विवरण है। इसी सामग्री को वर्णन द्वारा प्रस्तुत करने पर कहानी में शिथिलता आ जाती है। लेकिन थोड़ी ही सूझ में नाटकीय-परिस्थिति की रक्षा करते हुए, कहानी में आवश्यक बातों का भी उल्लेख हो गया।

कहानी में वातावरण, समय, पात्र की सांसारिक-स्थिति प्लाट के प्रस्तावना भाग की अन्य ऐसी बातों का विवरण तभी देना चाहिए, जब कहानी की घटना के लिए उनका ब्योरा देना अनिवार्य हो।

कहानी और उपन्यास में यही अन्तर है। कहानी में कथा का बहुत कुछ विवरण इसलिए छोड़ दिया जाता है कि पाठक कल्पना से उस अंश को पूरा कर ले। कहानी में किन घटनाओं का वर्णन आवश्यक है, किनका नहीं—इसके चुनाव में भी एक कला है।

इस दृष्टि से प्रसाद जी की मधुआ शीर्षक कहानी अध्ययन करने योग्य है। शराबी के सूने जीवन के साथ ही 'मधुआ' से उसके साक्षात होने का दृश्य सामने आता है। ठाकुर साहब के जमादार को खोजते हुए, जब शराबी फाटक के बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कंठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। वह खड़ा होकर सुनने लगता है। इसके बाद जब भयभीत बालक के छोटे से सुन्दर मुँह पर आँसू की बूँदे ढुलकने लगती हैं तो शराबी बड़े दुलार से उसका मुँह पोंछते हुए फाटक के बाहर चला जाता है। बालक का सिसकना कम नहीं होता। शराबी झिड़क उठता है—"अब क्यों रोता है रे छोकड़े ?" इसी सिलसिले में—"सुनता है रे छोकड़े रोना मत, रोयेगा तो खूब पीटूँगा। मुझसे रोने से बड़ा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का······।"

शराबी के हाथ में एक रुपया था। उसका विचार था—बारह आने का एक देसी अद्धा, लेकिन बालक के 'गढे' का ध्यान आते ही वह अद्धा न लेकर पूरे एक रुपये की मिठाई पूरी खरीद लेता है। घर जल्दी पहुँचने के लिए शराबी एक तरह से दौड़ने लगा। वह सोचता है—मेरी इतनी माया-ममता जिस पर आज तक केवल बोतल का अधिकार था, बालक का पक्ष क्यों लेने लगी। बैठे बैठाये यह हत्या कहाँ से आ लगी। मधुआ से पूछता है—"क्यों रे मधुआ, अब तू कहाँ जायगा ?" और 'नहीं' उत्तर मिलने पर—"तब कोई काम करना चाहिए। मेरे साथ साथ

घूमना पड़ेगा। यह कल तेरे लिए लाया हूँ। तुझे सान देना सिखा दूँगा।"

लेखक ने चुनी हुई तीन चार घटनाओं द्वारा शराबी के हृदय में माया-ममता का उदय दिखाया है। कहानी में 'दुलार से उसका मुँह पोछना,' 'अपनी रुलाई रोकने के लिए बालक को झिड़कना' इत्यादि थोड़े से संकेत दिये गये हैं। बाकी अंश पूरा करने का भार पाठकों पर छोड़ दिया गया।

प्लाट को कहानी में परिवर्त्तित करते समय उसके अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए कुछ उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। कहानी में इन उपकरणों का विशेष महत्व है, क्योंकि प्लाट की मुख्य घटना को उपस्थित करने में इनसे बहुत सहायता मिलती है।

आँधी शीर्षक कहानी में मुख्य प्लाट लैला की प्रेम-कहानी प्रकट करना है। इसके लिए घटनाओं का रचना-क्रम इस प्रकार है—

१—मैं पारिजात के सौरभ में अपने सिर को धीरे-धीरे हिलाता हुआ कुछ गुनगुनाता चला जा रहा था। सहसा मुचकुन्द के नीचे मुझे धुआँ और कुछ मनुष्यों की चहल-पहल का अनुमान हुआ। मैं कुतूहल से उसी ओर बढ़ने लगा।

२—वहाँ कभी एक सरांय थी, अब उसका ध्वंस बच रहा था। दो एक कोठरियाँ थीं; किन्तु पुरानी प्रथा के अनुसार अब भी वहीं पर पथिक ठहरते हैं।

मैंने देखा कि मुचकुन्द के आस-पास दूर तक एक विचित्र जमावड़ा। अद्भुत शिविरों की पांति में वहां पर कानन-चरों; बिना घर वालों की एक बस्ती बसी हुई है।

चलते-फिरते घरों की थोड़ी विवेचना के बाद कहानी इस तरह आगे बढ़ती है।

३—मैं धीरे-धीरे मुचकुन्द के पास पहुँच गया। उसकी एक डाल से बँधा हुआ एक सुन्दर बछेड़ा हरी-हरी दूब खा रहा था और लंहगा कुरता पहिने, रुमाल सिर से बांधे हुए एक लड़की उसकी पीठ सूखे घासों के मुट्ठे से मल रही थी। मैं रुक कर देखने लगा। उसने पूछा—
"घोड़ा लोगे बाबू?"

४—"नहीं" कहते हुए मैं आगे बढ़ा था कि एक तरुणी ने झोपड़े से सिर निकाल कर देखा। वह बाहर निकल आई। उसने कहा—
"आप पढ़ना जानते हैं?"

"हाँ जानता तो हूँ।"

"हिन्दुओं की चिट्ठी आप पढ़ लेंगे?" ('आँधी'—प्रसाद)

लैला का प्रवेश कराने से पहले लेखक ने उपयुक्त वातावरण तैयार कर लिया है। उसे देखने से पूर्व ही उसके जीवन का बहुत कुछ आभास पाठकों को मिल जाता है। और इस तरह एकाएक वह रंगमंच पर प्रवेश नहीं करती है।

कहानी के रचना-क्रम में इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए, स्थल स्थल पर घटनाओं की लड़ी टूटने न पावे। कभी-कभी प्लाट की विविध घटनाओं में दीर्घ समय का अन्तर रहता है। कुशल लेखक ऐसे अवसरों पर एक घटना से दूसरी घटना तक पहुँचने के लिए, पहले ही से जमीन तैयार कर लेते हैं। इस तरह समय का अन्तर, उभर कर सामने नहीं आता और कहानी सहज गति से आगे बढ़ती जाती है।

घटना प्रधान कहानियों में—जिनमें रेल-से दिखाई पड़ने

वाले भागते हुए दृश्यों के समान, घटनाओं का चित्रण रहता है—निम्नलिखित वाक्य बहुत उपयुक्त होते हैं।

१—एक एक दिन गिनकर एक वर्ष समाप्त हुआ।

२—इसी तरह एक सप्ताह और समाप्त हुआ।

३—दिन, सप्ताह और महीने उलझते चले गये।

४—दिन अँधेरी रात की तरह काले हो गये थे।

५—प्रतिदिन परिवर्त्तन कुछ भुनभुना कर चला जाता।

६—वर्ष के बाद वर्ष आए और गये।

७—दिन कट रहे थे।

आधुनिक कहानियों में यथा सम्भव विविध घटनाओं के बीच थोड़े समय का अन्तर रखा जाता है। यदि कभी कहानी में दीर्घ समय का अन्तर आ ही जाय तो उसे अलग अलग अध्यायों में विभाजित कर दिया जाता है। एक अध्याय से दूसरा अध्याय घटना क्रम की दृष्टि से जुड़ा होना चाहिए, इसके लिए बीच में इस आशय का वाक्य जोड़ दिया जाता है—'कृपानाथ ने निश्चय किया कि रूपा का विवाह चार महीने बाद होगा।'

इस वाक्य से पहले अध्याय का अन्त करने पर, दूसरा अध्याय आसानी से रूपा के विवाह के दृश्य से आरम्भ किया जा सकता है।

कभी कभी कहानियों में ऐसे वाक्यों का समावेश हो जाता है—'जैसा कि पहले कहा जा चुका है', 'ऊपर लिखी हुई घटना के अनुसार' इत्यादि। रचना-क्रम की दृष्टि से ऐसे वाक्यों का प्रयोग वांछित नहीं है, क्योंकि इनसे लेखक की कमजोरी प्रकट होती है। लेखक के वर्णन में इतनी शक्ति नहीं, इसलिए ऐसे वाक्यों द्वारा पाठकों को स्मरण दिलाने की आवश्यकता पड़ती है।

शीर्षक, आरम्भ और अन्त

कहानी लिखते समय सबसे पहले शीर्षक, आरम्भ और अन्त के सम्बन्ध में निश्चय कर लेना, लेखक के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

शीर्षक पर दृष्टि पड़ते ही बहुत से पाठक उसे पढ़ने के लिए उत्सुक होते हैं। कभी कभी शीर्षक देखकर ही पाठक कहानियाँ नहीं पढ़ते, जैसे किसी कहानी का शीर्षक 'विधवा' अथवा 'अभागिनी' है, तो आरम्भ में ही पाठकों को यह ज्ञान हो जाता है कि कहानी में एक विधवा अथवा अभागिनी की दुर्दशा का वर्णन किया गया है।

किसी प्रसिद्ध कहानी-लेखक का नाम देखकर भी, पाठक कहानी की ओर आकर्षित होते हैं। लेकिन उनकी कहानियों का भी शीर्षक ठीक न हुआ तो पाठक पहली उत्सुकता के अनुपात में ही तीव्र निराशा बोध करता है। कहानियों को प्रभावात्मक बनाने में शीर्षक का महत्वपूर्ण स्थान है। कहानी इतनी सुडौल होनी चाहिए कि किसी भी स्थल पर मतभेद की गुंजाइश न रहे, पाठक यह अनुभव करने लगे कि इस ढंग की कहानी इससे अच्छी नहीं तैयार हो सकती।

जैसे किसी बड़ी दुकान में उसकी खिड़कियों को सजाना पड़ता है, उसी तरह कहानियों में शीर्षक का आकर्षक होना आवश्यक है।

हिन्दी कहानियों में लेखक प्रायः शीर्षक की ओर ध्यान नहीं देते; किन्तु पाश्चात्त्य देशों में कहानियों के शीर्षक को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसका कारण यह है कि वहाँ हजारों पत्र-पत्रिकाएँ और लेखक भरे पड़े हैं। प्रतिदिन सैकड़ों कहानियाँ पाठकों के सम्मुख आती हैं। वह केवल शीर्षक अथवा दो-चार आरम्भिक लाइनें पढ़कर ही समझ लेते हैं कि यह उनकी रुचि के अनुसार पढ़ने योग्य है, या नहीं ?

शीर्षक कितने शब्दों का हो, इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। सामने आने पर ही निर्णय होता है कि वह अच्छा है अथवा बुरा। फिर भी यह ध्यान में रख लेना चाहिए कि शीर्षक चार शब्दों से अधिक का न हो, तो ठीक होगा। कभी कभी पूरे वाक्य का शीर्षक बना दिया जाता है। लेकिन इस ढंग के सभी शीर्षक आकर्षक नहीं होते। इनके चुनाव में अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है।

एक शब्द का शीर्षक—'बिसाती', 'रमला', 'रधिया', 'चाँदनी', 'घासवाली', 'नशा', 'कायर', 'सत्याग्रह', प्रतिध्वनि', 'झाँकी', 'इस्तीफा', 'मंत्र', 'स्वामिनी'।

नवीन लेखकों को एक शब्द के शीर्षक का उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। एक शब्द के शीर्षक प्रायः (१) प्रधान पात्र पात्री के नाम पर अथवा (२) उनकी किसी विशेष

मनोवृत्ति के आधार पर अथवा (३) कहानी की प्रधान घटना अथवा (४) भावना को व्यक्त करने के लिए रख दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए, पहली श्रेणी के शीर्षक—'बिसाती', 'रमला', 'रधिया', 'चाँदनी', 'घासवाली'। दूसरी श्रेणी के शीर्षक—'नशा', 'कायर'। तीसरी श्रेणी के शीर्षक—'सत्याग्रह', 'प्रतिध्वनि', 'झाँकी', 'इस्तीफा'। चौथी श्रेणी के शीर्षक—'ज्योति', 'मंत्र'।

एक शब्द का शीर्षक प्रायः विशेष आकर्षक नहीं होता। लेकिन कुशल कहानी-लेखक कभी कभी शीर्षक पर विशेष ध्यान न देकर चरित्र-चित्रण, घटना और लेखन-शैली की विशेषता से अपनी कहानी को अत्यन्त महत्वपूर्ण बना लेता है।

दो शब्दों का शीर्षक—'आकाश-दीप', 'भूली बात', 'उसकी कहानी', 'रूखा-स्नेह', 'जूठा आम'।

तीन शब्दों के शीर्षक कहानी के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं। तीन शब्दों में भाव को व्यक्त करने में अधिक सुविधा होती है। नवीन लेखक यदि तीन शब्दों का शीर्षक अपनी कहानियों के लिए चुनें तो कहीं अच्छा होगा। जैसे—'दोज़ख़ की आग', 'उसने कहा था', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'हार की जीत', 'अभागों का घर', 'कलाकारों की समस्या'।

चार शब्दों का शीर्षक—'स्वर्ग के खंडहर में'। प्रसाद जी की समस्त कहानियों में यह सब से आकर्षक शीर्षक है।

कभी कभी प्रचलित कहावतों का शीर्षक रखकर लेखक कहानी का ढाँचा बना लेता है; जैसे—'घूँघट के पट खोल री'।

केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि शीर्षक आकर्षक हो, किन्तु कहानी के साथ साथ शीर्षक का सामञ्जस्य होना चाहिए जो कहानी के रहस्य को अपने धुँधले आवरण में छिपाये हो—तभी उसकी सफलता है।

आरम्भ

कहानी लिखने की दो प्रणालियाँ अधिक प्रचलित हैं।

१—प्रथम पुरुष।

२—अन्य पुरुष।

पत्र तथा डायरी के रूप में भी कहानियाँ लिखी जाती हैं लेकिन इनकी अलग व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अधिकांशतया ऐसी कहानियों में प्रथम पुरुष अथवा अन्य पुरुष, अथवा दोनों शैलियों के सम्मिलित रूप का सहारा लिया जाता है।

प्रथम पुरुष (मैं) से कहानियाँ लिखना बहुत कठिन है और बहुत सरल भी है। कठिन इसलिए है कि साधारणतया चरित्र-चित्रण तथा परिस्थितियों पर प्रकाश डालने में लेखक जो सर्वज्ञता का भाव धारण कर लेता है, उसकी सुविधा नहीं रहती। और सरल इसलिए है कि अन्य पुरुष में लिखी जाने वाली कहानी में घटना-क्रम, भाव-व्यञ्जना और स्वाभाविकता का जितना ध्यान रखना पड़ता है, उतना इस ढंग की कहानियों में नहीं। एक बार जो 'मैं' से कहानी चली, तो फिर चाहे कोई घटना भी न मिले, लेकिन कहानी समाप्त हो जायगी।

प्रथम पुरुष (मैं) से कहानी इस तरह लिखी जाती है—

"मेरी एक बीवी थी। गुलाब की तरह खूबसूरत, मोती की तरह आबदार, कोहेनूर की तरह बेशक़ीमत, नेकी की तरह नेक, चाँद की तरह सादी, लड़कपन की हँसी की तरह भोली और जान की तरह प्यारी।

मेरे एक बच्चा था। चाँदी-सा गोरा, नये चाँद-सा प्यारा, युवती के कपोल-सा कोमल, प्रेम-सा सुन्दर, चुम्बन-सा मधुर, आशा-सा आकर्षक और प्रसन्न हँसी-सा सुखद।

मेरी एक माँ थी। मसजिद की तरह बूढ़ी, आम की तरह पकी, दया की तरह उदार, दुआ की तरह मददगार, प्रकृति की तरह करुणा-मयी, खुदा की तरह प्यारी और कुरानपाक की तरह पाक।

मेरी एक दर्जी की दुकान थी। वही मेरी ग़रीबी के बुढ़ापे की लकड़ी थी, वही मेरे चार आदमियों के परिवार के होटल की मालकिन थी, वही मेरी रोजी थी, वही मेरी रोटी थी, वही मेरे ऊजड़ घर की फूस की टट्टी थी, वही मेरी झोपड़ी का चिराग़ थी। बीवी की हँसी, बच्चे की खुशी, माँ की दोआ, खुदा की याद, सब कुछ वही थी। वही मेरी दुनिया थी।"

('दोज़ख की आग'—उग्र)

प्रथम पुरुष में कहानी लिखते समय इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए, कहाँ तक 'मैं' को प्रमुख बनाया जाय! ऐसी कहानियों में प्रायः लेखक अपना व्यक्तिगत अनुभव ही व्यक्त करने लगता है। व्यक्तिगत अनुभव तो कहानी-लेखक का प्रधान साधन है। उसका एक निश्चित क्रम हो जाने पर वह कला का एक रूप बन जाता है। कहानी को घटना प्रधान कर देने से भी इस दोष से बचा जा सकता है। चरित्र-चित्रण में यह नियम उपयोगी सिद्ध होगा कि चरित्रों का विकास उसी क्रम से हो—जिस क्रम से कथा-कार से उनका परिचय घनिष्ठ हो।

जिन कहानियों का आरम्भ अन्य पुरुष में होता है, उनमें लेखक, पात्रों को चरित्र के सम्बन्ध में उनके विचार, रहन-सहन, इत्यादि सभी वातों पर अपने को अलग रखते हुए प्रकाश डालता है।

कहानियाँ तीन तरह से आरम्भ की जाती हैं। (१) वर्णन के साथ आरम्भ, (२) वार्तालाप द्वारा आरम्भ, (३) किसी घटना अथवा क्रियात्मक रूप से ही कहानी का आरम्भ।

१—वर्णन के साथ आरम्भ—

"हरिधन जेठ की दुपहरी में ऊख में पानी देकर आया और बाहर बैठा रहा। घर में से धुआं उठता नज़र आता था। छन-छन की आवाज़ भी आ रही थी। उसके दोनों साले उसके बाद आये और घर में चले गये। दोनों सालों के लड़के भी आये और उसी तरह अन्दर दाखिल हो गये; पर हरिधन अन्दर न जा सका। इधर एक महीने से उसके साथ यहाँ जो बर्ताव हो रहा था और विशेषकर कल उसे जैसी फटकार सुननी पड़ी थी, वह उसके पांव में बेड़ियाँ-सी डाले हुए था! कल उसकी सास ही ने तो कहा था, मेरा जी तुमसे भर गया, मैं तुम्हारी जिन्दगी भर का ठीका लिये बैठी हूँ क्या—और सब से बढ़कर अपनी स्त्री की निठुरता ने उसके हृदय के टुकड़े कर दिये थे। वह बैठी यह फटकार सुनती रही; पर एक बार भी तो उसके मुँह से न निकला, अम्माँ, तुम क्यों इनका अपमान कर रही हो?"

('घरजमाई'—प्रेमचन्द)

"धीरे-धीरे रात खिसक चली; प्रभात के फूलों से तारे चू पड़ना चाहते थे। विन्ध्य की शैलमाला में गिरि पथ पर एक झुण्ड बैलों का बोझ लादे चला आता था। साथ के बनजारे उनके गले की घण्टियों के मधुर स्वर में अपने ग्राम-गीतों का आलाप मिला रहे थे। शरद ऋतु की

ठण्ढ से भरा हुआ पवन उस दीर्घ पथ पर किसी को खोजता हुआ दौड़ रहा था।"

('बनजारा'—प्रसाद)

२—वार्तालाप से आरम्भ—

कहानी की पहली लाइन अथवा पहला पैरा अपने आप आगे चढ़ता जाय। यह भी एक कला है।

"बन्दी।"

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"हाँ ?"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा—स्नेह का असम्भावित आलिंगन! दोनों ही अन्धकार में मुक्त हो गये।

दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से, उसको गले से लगा लिया। सहसा उस स्त्री ने कहा—"यह क्या ? तुम स्त्री हो ?"

('आकाश-दीप'—प्रसाद)

३—घटना द्वारा आरम्भ—

पाश्चात्य देशों में घटनात्मक कहानियाँ पाठक अधिक चाव से पढ़ते हैं। जैसे—

(क) "उस दिन शनीवार की दोपहर में जोन्स ने निश्चय किया कि वह अपनी पत्नी की हत्या करेगा।"

(ख) "छकौड़ी लाल ने दुकान खोली और कपड़े के थानों को निकाल निकाल रखने लगा कि एक महिला, दो स्वयं सेवकों के साथ उसकी दुकान को छेकने आ पहुँची।"

('तावान'—प्रेमचन्द)

पहली ही लाइन से ही कौतूहल आरम्भ हुआ।

कहानियों में आरम्भ का मुख्य उद्देश्य है—(१) कहानी के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करना, (२) उसकी मुख्य घटना का आभास देना। सब से अच्छा आरम्भ वही है, जिनमें इन दोनों विशेषताओं का सम्मेलन हो। जैसे—

"माया हँस देती थी। मेरे प्रश्नों का सदैव यही उत्तर मिलता था।" ('जूठा आम'—पंत)

अन्त

जिस तरह कहानी का आरम्भ महत्वपूर्ण है, उसी तरह कहानी के अन्त के सम्बन्ध में भी विशेष सावधानी रखना आवश्यक है। कहानी का अन्त करते समय, बहुधा पाठक कह उठते हैं कि यह कहानी अस्वाभाविक है इसका अन्त सुन्दर नहीं हुआ है।

कहानी के अन्त में ही लेखक की कुशलता का पता चलता है।

आरम्भ की अपेक्षा कहानी का अन्त बनाना सरल है। कहानी आरम्भ करते समय लेखक एक अज्ञात प्रदेश में रहता है। लेकिन अन्त तक पहुँचते पहुँचते कहानी का वातावरण, उसका प्रभाव तथा चरित्रों का विकास, एक निश्चित दिशा में अंकित हो जाता है। लेखक में इतनी क्षमता चाहिए कि वह इन रेखाओं का ध्यान रखते हुए, चित्र को स्वाभाविक रूप में पूरा कर दे।

साहसिक, घटनात्मक, पौराणिक, ऐतिहासिक कहानियों का अन्त कथानक के अनुसार बना लिया जाता है; किन्तु भावात्मक कहानियों का अन्त करना अत्यन्त कठिन होता है। भावात्मक कहानियों के अन्त के सम्बन्ध में प्रायः लोग कहते हैं—'इसका अन्त ठीक नहीं हुआ, इसके आगे और कुछ चाहिए था।' सर्व-साधारण के लिए भावात्मक कहानियाँ पहेली के रूप में बन जाती हैं। इसमें कला क्या है ? यह वे न तो समझने की चेष्टा करते हैं और न उनमें इतनी योग्यता ही होती है। इसलिए भावात्मक कहानियों की माँग अधिक नहीं होती।

यहाँ पर उदाहरण के लिए कुछ भावात्मक कहानियों का अन्तिम अंश दिया जाता है, जिसके सम्बन्ध में पाठक निश्चय करें कि अन्त ठीक हुआ या नहीं ?

"गोधूली थी और वही उदास रमला झील ! साजन थका हुआ बैठा था। आज उसके मन में, आँखों में, न जाने कहां का स्नेह उमड़ा पड़ता था। प्रशान्त रमला में एक चमकीला फूल हिलने लगा; साजन

ने आँख उठा कर देखा—पहाड़ी की चोटी पर एक तारिका रमला के उदास भाल पर सौभाग्य-चिन्ह सी चमक उठी थी। देखते-देखते रमला का वक्ष नक्षत्रों के हार से सुशोभित हो उठा। साजन ने पुकारा—'रानी"

('रमला'—प्रसाद)

"बिसाती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौट कर नहीं आया। शीरीं ने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।"

('बिसाती'—प्रसाद)

"साल में एक बार आम्र-मंजरियों की आड़ से झांक कर माया मुझे दर्शन देती है। उससे कहता हूँ—"माया !"

वह लजित हो जाती है और पत्तों के घूँघट को अधिक खींच लेती है। मैं कहता हूँ—"क्यों माया, इतनी लज्जा क्यों ?"

वह कहती है—"अब मेरा विवाह हो गया।"

('जूठा-आम'—गोविन्द वल्लभ पन्त)

भावात्मक कहानियों में चरित्र-चित्रण का ब्योरेवार लेखा पाठकों को नहीं मिलता। मानव हृदय की अज्ञात भावनाएँ, किस रूप में विकसित होकर रहस्य-पूर्ण परिणाम तक पहुँच जाती हैं, इसका क्रम कभी-कभी जीवन में नहीं देखा जाता; किन्तु ऐसी घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं, जिन्हें मनोविज्ञान के ज्ञाता भी चकित होकर देखते हैं, क्योंकि वे रहस्य-पूर्ण ही बनी रह जाती हैं। मनोवैज्ञानिकों ने चरित्र-विकास में दो अंश माने हैं, एक तो वह जो उसकी निजी स्वभाव-कोटि में है, जिसे वह प्रायः अपने जन्म से ही पाता है। दूसरा जो परिस्थितियों से उत्पन्न होता है। मानव जीवन के उपादान में केवल यही दो बातें हैं, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जीवन में जब हम देखते हैं कि दृढ़

धारणा से एक ओर अग्रसर होते हुए भी सहसा अज्ञात कारण से हम दूसरी ओर चले जाते हैं, तो उसे प्रायः लोग स्वस्थ मन की क्रिया नहीं मानते। किन्तु भाव जगत बड़ा जटिल है, जानते हुए भी हम अनजान बन जाते हैं। कभी अज्ञात की मूढ़ता में भी कोई किरण चमक जाती है, तब हम उसका अनुसरण करने लगते हैं।

उन निगूढ़ भावनाओं को नियति की प्रेरणा कहा जा सकता है। जिनका स्पष्ट क्रम मनोविज्ञान में नहीं मिलता। तब ऐसे रहस्य-पूर्ण कोमल मनोभावों की अभिव्यक्ति करना भावात्मक कहानियों का लक्ष है।

चरित्र-चित्रण

कहानियों में चरित्र-चित्रण का प्रमुख स्थान है। साधारण कहानियाँ कुछ समय में पाठक भूल जाते हैं, किन्तु जिनमें चरित्र-चित्रण की विशेषता रहती है, वे सदा के लिए पाठकों के मन पर प्रभाव जमा लेती हैं।

सफलता पूर्वक चरित्र-चित्रण करने के लिए यह आवश्यक है कि लेखक को मनोविज्ञान का विशेष अध्ययन हो। उसे अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से देखना चाहिए कि एक ही श्रेणी के पाँच मनुष्य हैं, उनकी मनोवृत्तियों में कहाँ कहाँ अन्तर है। इन बारीकियों को सुलझाने में ही कहानी के अद्भुत चरित्रों की सृष्टि होती है।

प्रति दिन जिनकी दिनचर्य्या हम देखते रहते हैं, अनायास ही कभी वह हमारी कहानी के पात्र बन जाते हैं।

प्रसादजी की 'गुंडा' कहानी में नन्हकूसिंह का कितना सजीव चित्रण है—

"वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ट और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियां नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नंगे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूछें बिच्छू के डंक की तरह, देखनेवालों की आँखों में चुभती थीं। उसका सांवला रंग, सांप की तरह चिकना

ग्रौर चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान ग्राकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप के मूठ का बिछुग्रा खूंसा रहता था। उसके घुंघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर, उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊंचे कन्धे पर टिका हुग्रा चौड़ी धार का गंड़ासा, यह थी उसकी धज। पञ्जों के बल जब वह चलता, तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुंडा था।"

प्रेमचन्दजी ने 'आत्माराम' कहानी में एक मार्मिक चरित्र उपस्थित किया है—

"वेदों, ग्राम में महादेव सुनार एक सुविख्यात ग्रादमी था। ग्रपने सायबान में प्रातः से संध्या तक ग्रँगीठी के पास बैठा हुग्रा खट खट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लिए लोग इतने ग्रभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण से वह बन्द हो जाती, तो जान पड़ता था, कोई चीज़ गायब हो गई है। वह नित्य प्रति एक बार प्रातःकाल ग्रपने तोते का पिंजड़ा लिए, कोई भजन गाता हुग्रा तालाब की ग्रोर जाता था। उस धुंधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर, पोपला मुंह ग्रौर झुकी हुई कमर देखकर किसी भी ग्रपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्योंही लोगों के कानों में ग्रावाज़ ग्राती— "सत्त गुरदत्त शिवदत्त दाता" लोग समझ जाते कि भोर हो गया।"

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए समाज से अलग करके उसकी ठीक व्याख्या नहीं हो सकती। उसके चरित्र को भली-भाँति समझने के लिए उसके जातीय, वंशीय, कौटुम्बिक और पैतृक इतिहास का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं चहारदीवारियों के भीतर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसके सिवाय, उसकी व्यक्तिगत योग्यता का भी परिचय होना चाहिए। जिसके बल

पर वह अपने वातावरण से टक्कर लेता, तथा उससे प्रभावित अथवा आतंकित होने पर तदानुकूल आचरण बनाने की चेष्टा करता है। शारीरिक व्यवस्था तथा तज्जनित विषमताएँ भी व्यक्ति के चरित्र को ढालने में विशेष भाग लेती हैं।

सजीव चरित्र उपस्थित करने के लिए, उचित रूप से उक्त सभी बातों का उल्लेख कहानी में आ जाना चाहिए। लेखक की कुशलता इन बातों पर निर्भर करती है—

(क) किसी चरित्र की कल्पना। (ख) छोटी छोटी घटनाओं का चुनाव, जिनके द्वारा उन चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा सके। (ग) इसी सिलसिले में नीचे लिखी बातों में जो सहायक हो सके उनका विवरण।

१—आयु, २—रंग रूप, ३—मुखाकृति, ४—पैतृक अंश जो चरित्र में विद्यमान हों, ५—परंपरागत प्रथाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, ६—उसकी कल्पना और उसके स्वप्न, ७—उसकी दिनचर्य्या, ८—उसके कार्य, ९—जीवन की घटनाएँ।

चरित्र-चित्रण में लेखक को बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। जैसे चित्र में एक रेखा उसे बना अथवा बिगाड़ सकती है, उसी प्रकार चरित्र-चित्रण में भी। कुशल शिल्पी किसी घटना अथवा वर्णन को स्थान देने से पहले, यह भली-भाँति सोच लेते हैं कि वह चरित्र के विकास में कहाँ तक सहायक होगी।

चरित्रों को उपस्थित करने के लिए चार साधन हैं—१-वर्णन द्वारा, २-संकेत से, ३-वार्तालाप द्वारा, ४-घटनाओं द्वारा।

आधुनिक ढंग की कहानियों में वर्णन द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख करना पसन्द नहीं किया जाता। अब इस तरह की बहुत कम कहानियाँ लिखी जाती हैं—"कामताप्रसाद दानी, सरल और बहुत उदार प्रकृति के मनुष्य थे।" संकेतात्मक चरित्र-चित्रण ही सामयिक माना जाता है। लेखक स्वयं अपने पात्रों के सम्बन्ध में यह निर्णय क्यों दे कि वह ऐसा है, वैसा है! इसके स्थान पर यह मार्ग ज्यादा ठीक है कि लेखक, पात्र की चारित्रिक वृत्तियों का उल्लेख करता जाय। उनसे परिणाम निकालने का भार पाठकों पर छोड़ दिया जाता है।

ओज-पूर्ण गद्य के साथ वर्णनात्मक चरित्र-चित्रण भी कभी कभी खूब प्रभावशाली बन पड़ता है। देखिए—

"उसका (कंजरों का) सरदार मैकू, लम्बी-चौड़ी हड्डियोंवाला, एक अधेड़ पुरुष था। दया, माया उसके पास फटकने नहीं पाती थी। उसकी घनी दाढ़ी और मूंछों के भीतर प्रसन्नता की हँसी भी छिपी रह जाती। गाँव में भीख माँगने के लिए जब कंजरों की स्त्रियाँ जातीं, तो उनके लिए मैकू की आज्ञा थी, कि कुछ न मिलने पर अपने बच्चों को निर्दयता से गृहस्थ के द्वार पर जो स्त्री न पटक देगी, उसको भयानक दण्ड मिलेगा।"

('इन्द्रजाल'-प्रसाद)

प्रेमचंदजी ने अपनी शैली में वर्णन द्वारा चरित्रों को उपस्थित करने में विशेषता प्राप्त कर ली है। एक उदाहरण—

"जगतसिंह को स्कूल जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था। वह सैलानी, आवारा, घुमक्कड़ युवक था। कभी अमरूद के बागों की ओर निकल जाता और अमरूदों के साथ माली की गालियां बड़े शौक से खाता। कभी दरिया की सैर करता और मल्लाहों

की डोंगियों में बैठकर उस पार के देहातों में निकल जाता। गालियां खाने में उसे मज़ा आता था। गालियां खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता। सवार के घोड़े के पीछे ताली बजाना, एक्कों को पीछे से पकड़ कर अपनी ओर खींचना, बुड्ढों की चाल की नकल करना, उसके मनोरंजन के विषय थे। आलसी काम तो नहीं करता; पर दुर्व्यसनों का दास होता है, और दुर्व्यसन धन के बिना पूरे नहीं होते। जगतसिंह को जब अवसर मिलता घर से रुपये उड़ा ले जाता। नक़द न मिले, तो बरतन और कपड़े उठा ले जाने में भी उसे संकोच न होता था। घर में जितनी शीशियां और बोतलें थीं, वह सब उसने एक-एक करके गुदड़ी-बाज़ार पहुँचा दीं। पुराने दिनों की कितनी ही चीज़ें घर में पड़ी थीं। उसके मारे एक भी न बचीं। इस कला में ऐसा दक्ष और निपुण था कि उसकी चतुराई और पटुता पर आश्चर्य होता था। एक बार वह बाहर-ही-बाहर केवल कर्निसों के सहारे, अपने दो मंज़िला मकान की छत पर चढ़ गया और ऊपर ही से पीतल की एक बड़ी थाली लेकर उतर आया। घर वालों को आहट तक न मिली।"

('कप्तान-साहब'—प्रेमचन्द)

२—संकेतात्मक चरित्र-चित्रण—

"समीप ही सफेद चट्टानों पर जल-धारा के लहरीले प्रवाह में कितना संगीत था! चाँदनी में वह कितना सुन्दर हो जाता। जैसे इस पृथ्वी का छाया पथ। मेरी उस झोंपड़ी से उसका सब रूप दिखाई पड़ता था न! मैं उसे देखकर सन्तोष का जीवन बिताने लगा। वह मेरे जीवन के सब रहस्यों की प्रतिमा थी। कभी उसे मैं आँसू की धारा समझता, जिसे निराश प्रेमी अपने आराध्य की कठोर छाती पर व्यर्थ ढुलकाता हो। कभी उसे अपने जीवन की तरह निर्मम संसार की कठोरता पर छटपटाते हुए देखता। दूसरे का दुख देखकर मनुष्य को सन्तोष होता ही है।"

('चित्रवाले पत्थर'—प्रसाद)

संकेतात्मक चरित्र-चित्रण की यह विशेषता है कि लेखक अन्य चित्रों का सहारा लेते हुए पात्रों के मनोभावों पर ही प्रकाश डालता रहता है। देखिए—

"शरद की पूर्णिमा में बहुत से लोग उस सुन्दर दृश्य को देखने के लिए दूर-दूर से आते। युवती और युवकों के रहस्यालाप करते हुए जोड़े, मित्रों की मण्डलियां, परिवारों का दल उनके आनन्द कोलाहल को मैं उदास होकर देखता। डाह होती, जलन होती। तृष्णा जग जाती। मैं उस रमणीय दृश्य का उपभोग न करके पलकों को दबा लेता। कानों को बन्द कर लेता।"

('चित्रवाले पत्थर')

चरित्र-चित्रण के लिए सब से उपयुक्त द्वार हैं—१—वार्तालाप २—घटनाएँ। इस तरह कहानी के आगे बढ़ने के साथ ही, चरित्रों का भी क्रमिक विकास होता जाता है।

वार्तालाप और घटनाओं के साथ ही साथ चरित्र-चित्रण भी कैसे किया जाता है, प्रसादजी का निम्न उद्धरण इसका उदाहरण है।

"उसके जाल में सीपियां उलझ गई थी। जग्गैया से उसने कहा—इसे फैलाती हूँ तू सुलझा दे।

जग्गैया ने कहा—मैं क्या तेरा नौकर हूँ?

कामैया ने तिनक कर अपने खेलने का छोटा-सा जाल और भी बटोर लिया। समुद्र-तट के छोटे से होटल के पास की गली से अपनी झोंपड़ी की ओर चली गई।

जग्गैया उस अनखाने का सुख लेता-सा गुनगुना कर गाता हुआ, अपनी खजूर की टोपी और भी तिरछी करके, संध्या की शीतल बालुका को पैरों से उछालने लगा।

दूसरे दिन जब समुद्र में स्नान करने के लिए यात्री लोग आ गये थे; सिन्दूर-पिण्ड-सा सूर्य समुद्र के नील जल में स्नान कर प्राची के आकाश में ऊपर उठ रहा था; तब कामैया अपने पिता के साथ धीवरों के झुण्ड में खड़ी थी। उसके पिता की नावें समुद्र की लहरों पर उछल रही थीं। महाजाल पड़ा था, उसे बहुत से धीवर मिलकर खींच रहे थे। जग्गैया ने आकर कामैया की पीठ में उँगली गोद दी। कामैया कुछ खिसक कर दूर जा खड़ी हुई। उसने जग्गैया की ओर देखा भी नहीं।

३—वार्तालाप द्वारा चरित्र-चित्रण—

"घर में जाते ही शारदा ने पूछा—किसलिए बुलाया था, बड़ी देर हो गई?

फ़तहचंद ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—नशे की सनक थी और क्या? शैतान ने मुझे गालियाँ दीं, ज़लील किया, बस यही रट लगाये हुए था कि देर क्यों की। निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा।

शारदा ने गुस्से में आकर कहा—तुमने एक जूता उतार कर दिया नहीं सुअर को?

फ़तहचंद—चपरासी बहुत शरीफ़ है। उसने साफ कह दिया—हुजूर, मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इज्जत उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी। वह उसी वक्त सलाम करके चला गया।

शारदा—यह बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यों नहीं फटकारा?

फ़तहचंद—फटकारा क्यों नहीं—मैंने भी खूब सुनाई। वह छड़ी लेकर दौड़ा—मैंने भी जूता सँभाला। उसने मुझे कई छड़ियाँ जमाईं—मैंने भी कई जूते लगाए।

शारदा ने खुश होकर कहा—सच? इतना-सा मुँह हो गया होगा उसका।

फ़तहचंद—चेहरे पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी।

शारदा—बड़ा अच्छा किया तुमने, और मारना चाहिए था। मैं होती, तो बिना जान लिए न छोड़ती।

फ़तहचंद—मार तो आया हूँ; लेकिन अब खैरियत नहीं है। देखो, क्या नतीजा होता है? नौकरी तो जायगी ही, शायद सज़ा भी काटनी पड़े।

शारदा—सज़ा क्यों काटनी पड़ेगी। क्या कोई इंसाफ़ करनेवाला नहीं है? उसने क्यों छड़ी जमाई?

फ़तहचंद—उसके सामने मेरी कौन सुनेगा। अदालत भी उसी की तरफ़ हो जायगी।

शारदा—हो जायगी, हो जाय; मगर देख लेना अब किसी साहब की यह हिम्मत न होगी कि किसी बाबू को गालियाँ दे बैठे। तुम्हे चाहिए था, कि ज्यों ही उसके मुँह से गालियां निकलीं, लपक कर एक जूता रसीद करते।"

('इस्तीफा'—प्रेमचन्द)

कहानी में वार्तालाप का उतना ही अंश आना चाहिए, जितना पात्र की किसी विशेष मनोवृति को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। प्रधानतः कहानी की घटना को बढ़ाने के लिए ही वार्तालाप का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस तरह उसकी विशेषता जाती रहती है और कहानी तीक्ष्ण नहीं बन पाती है।

प्रति दिन हम कितनी व्यर्थ बातें कह जाते हैं, लेकिन कभी कोई बात ऐसी भी निकल पड़ती है जो भुलाये नहीं भूलती है। ऐसा प्रतीत होता है, इस व्यक्ति के इस वाक्य को औरों से अलग किया जा सकता है। कहानी में ऐसे ही चुने हुए सम्भाषणों को स्थान मिलना चाहिए।

४—घटनात्मक चरित्र-चित्रण—

"एक बार हमारा कहार छोड़ कर चला गया और कई दिन कोई दूसरा कहार न मिला। किसी चतुर और कुशल कहार की तलाश में थी; किन्तु आपको जल्द-से-जल्द कोई आदमी रख लेने की धुन सवार हो गई। एक दिन जाने कहां से एक बांगडू को पकड़ लाये। उसकी सूरत कहे देती थी कि कोई जांगलू है। मगर आपने उसका ऐसा बखान किया कि क्या कहूँ ! बड़ा होशियार है, बड़ा आज्ञाकारी, परले सिरे का मेहनती, गज़ब का सलीकेदार, और बहुत ही इमानदार… …बेईमान न था पर गदहा अव्वल दरजे का।……'मूर्ख को झाड़ू लगाने की तमीज़ न थी। मरदाना कमरा ही तो सारे घर में ढंग का एक कमरा है। उसमें झाड़ू लगाता, तो इधर की चीज़ उधर, ऊपर की नीचे; मानों कमरे में भूकम्प आ गया हो ! और गर्द का यह हाल कि सांस लेना कठिन; पर आप शान्तिपूर्वक कमरे में बैठे हैं, जैसे कोई बात नहीं। एक दिन मैंने उसे खूब डांटा—कल से ठीक-ठीक झाड़ू न लगाई, तो कान पकड़ कर निकाल दूँगी। सवेरे सोकर उठी, तो देखती हूँ कि कमरे में झाड़ू लगी है। और हर एक चीज़ करीने से रखी है, गर्द गुबार का नाम नहीं। मैंने समझा खैर, दुष्ट ने एक काम तो सलीके से किया। अब रोज़ कमरा साफ़ सुथरा मिलता। घूरे मेरी दृष्टि में विश्वास-पात्र बनने लगा। संयोग की बात, एक दिन मैं ज़रा मामूली से सवेरे उठ बैठी और कमरे में आई, तो क्या देखती हूँ, कि घूरे द्वार पर खड़ा है और आप तन मन से कमरे में झाड़ू लगा रहे हैं। ……हरामखोर को उसी दिन निकाल बाहर किया। आप फ़रमाने लगे—उसका महीना तो चुका दो।"

('गिला'—प्रेमचन्द)

"स्नान करने के बाद जब मैं ऊपर छत पर अपने बालों को कंघी से संवारता तो कभी सामने उमा को देखकर, शीशे को सूर्य की प्रखर किरणों के साथ, इस तरह नचाता, जिसमें उसका अक्स उमा के सन्मुख दौड़ता रहे।

उसकी आँखे झलमला उठतीं। मैं अपनी जवानी की ना-समझी का आनन्द लेता।"

('उसकी-कहानी'—विनोद)

कहानी में प्रायः एक मुख्य घटना होती है, शेष सहायक। सहायक घटनाओं के उतने ही अंश का वर्णन दिया जाता है, जहाँ तक वे मुख्य घटना को पूरा करने में समर्थ हों। इन्हीं सहायक घटनाओं पर चरित्र-चित्रण का भी कुछ भार रहता है। घटनाओं द्वारा चरित्र उपस्थित करते समय यह भी आवश्यक है कि ऐसी घटनाएँ छोटी हों, तथा कहानी के मुख्य ध्येय से उनका सामंजस्य हो।

सुन्दर भाषा चरित्र-चित्रण में बहुत सहायक होती है। कभी कभी विख्यात चरित्रों, दृश्यों, अथवा उपमाओं का सहारा ले लेने पर, कहानी के पात्र की चारित्रिक विशेषताओं का प्रथक उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जैसे—'गांधी की ज़बान जैसी सचाई उसमें थी।' इस एक लाइन में पात्र का सम्पूर्ण चरित्र हमारी आँखों के सामने खिंच जाता है।

'सफलता' शीर्षक कहानी में निराला जी ने उपमाओं में ही चरित्र का विकास किया है। देखिए—

"जो हवा दिए के जलते रहने की वजह है, वह दिए को बुझा भी देती है। आभा के सस्नेह अकलुष प्राणों के पावन प्रदीप को पति की जिस निश्चल समीर ने साल-भर तक जला रक्खा था, वह साल-भर से उसे बुझाकर, उसकी पृथ्वी से दूर, अन्तरिक्ष की ओर तिरोहित हो गई है। साल ही भर में सुहाग का काजल उस दीप प्रकाश के ऊपर, रतनार,

आँखों में, प्रिय दर्शन के अंजन-रूप नहीं रह गया। आभा आज की शरत् की तरह अपनी सारी रंगीनियों को धोकर शुभ्र हो रही है—श्वेत शेफाली-सी रंगे प्रभात के रश्मि-पात-मात्र से वृंतच्युत-जैसे केवल देवार्चन के लिए चुनी हुई। पर, प्राणों के नीचे, डंठल में, जो रंग लगा हुआ है, वह तो शरत् का नहीं—वसंत का है।"

चरित्रों को स्वाभाविक बनाने के लिए, कहीं कहीं ठेठ भाषा का अथवा पात्रों की मातृभाषा का प्रयोग किया जाता है। जैसे, कोई बंगाली, मराठी, मदरासी, गुजराती अथवा इरानी पात्र है, तो क्या वार्तालाप का उतना अंश उसकी मातृभाषा में ही होना चाहिए? साधारणतया हिन्दी का प्रयोग अभीष्ट है। लेकिन जहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पात्र की किसी विशेष मनोवृत्ति का परिचय देना हो तब उसकी मातृभाषा का प्रयोग भी उपयुक्त हो सकता है। प्रसाद जी ऐसे स्थलों पर पात्र की मातृभाषा का उल्लेख करते हुए, उसके आगे यह पंक्ति जोड़ देते हैं—उसके कहने का तात्पर्य था......।

वार्तालाप के साथ जो वर्णनात्मक अंश आता है, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उसका भी महत्व है। वार्तालाप में जो भाव व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसका निर्देश इन वाक्यों में दे दिया जाता है। यह ध्यान रहे, निर्देश केवल उतना ही चाहिए, जितना चित्र को सांकेतिक रूप में स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हो। जहाँ पर वार्तालाप अपने आप आगे बढ़ता हो, वहाँ ऐसे निर्देश की आवश्यकता नहीं।

कहानी में कितने पात्र हों, यह भी एक समस्या है। कहानी

के विषय के अनुसार ही इसका निर्णय हो सकता है। लेकिन आमतौर से यही ठीक जान पड़ता है कि कहानी में दो से अधिक पात्र न हों। अन्य छोटे—सहायक—चरित्रों का समावेश हो सकता है; लेकिन उनका अस्तित्व कहानी के मुख्य चरित्रों के लिए ही होगा।

कहानी के पात्रों के नाम पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। अगर कोई भिन्न उद्देश्य हो तब तो ठीक, अन्यथा जिस श्रेणी के पात्र हों, वैसा ही नाम भी होना चाहिए।

वार्तालाप

कहानी में वार्तालाप अनिवार्य है। क्योंकि अपने भावों और विचारों के प्रकाशन के लिए मनुष्य के पास यही एक प्रधान साधन है, और कहानी को स्वाभाविक बनाये रखने के लिए, उसमें भी इसी साधन का उपयोग होना चाहिए।

नाटकों में लगभग पूरी कथा वार्तालाप द्वारा उपस्थित की जाती है। कहानियों में भी इस कला का अनुकरण किया जा सकता है। नाटक में जहाँ तक अभिनेताओं और पर्दों का सहयोग रहता है, कहानी में वर्णन से इस अंग की पूर्त्ति होती है।

कहानियों में वार्तालाप से एक साथ इन तीन कार्यों में सहायता मिलती है—

(१) चरित्र-चित्रण में।

(२) घटनाओं को गतिशील बनाने में।

(३) भाषा-शैली का निर्माण करने में।

उदाहरण—

(क) "मैकू ने बाहर आकर देखा कि भूरे और गोली में लड़ाई हो रही थी। मैकू के कर्कश स्वर से दोनों भयभीत हो गये। गोली ने कहा—'मैं बैठा था, भूरे ने मुझको गालियाँ दीं। फिर भी मैं न बोला, इस पर उसने मुझे पैर से ठोकर लगा दी।'

'और यह समझता है कि मेरी बांसुरी के बिना वेला गा ही नहीं सकती। मुझसे कहने लगा कि आज तुम ढोलक वेताल बजा रहे थे।' भूरे का कंठ क्रोध से भर्राया हुआ विकृत था।

मैकू हँस पड़ा। वह जानता था कि गोली युवक होनेपर भी सुकुमार और अपने प्रेम की माधुरी में विह्वल, लजीला और निरीह था। अपने को प्रमाणित करने की चेष्टा उसमें थी ही नहीं। वह आज जो कुछ उग्र हो गया, इसका कारण है केवल भूरे की प्रतिद्वन्द्विता।

वेला भी वहीं आ गई थी। उसने घृणा से भूरे की ओर देखकर कहा—'तो क्या तुम सचमुच वेताल नहीं बजा रहे थे ?'

'मैं वेताल न बजाऊँगा, तो दूसरा कौन बजावेगा। अब तो तुझको नये यार न मिले हैं। वेला ! तुझको मालूम नहीं कि तेरा बाप मुझसे तेरा ब्याह ठीक करके मरा है। इसी बात पर मैंने उसे अपना नैपाली का दोगला टट्टू दे दिया था, जिस पर अब भी तू चढ़कर चलती है।' भूरे का मुंह क्रोध के झाग से भर गया था। वह और भी कुछ बकता; किन्तु मैकू की डाँट पड़ी। सब चुप हो गये।"

('इन्द्रजाल'—प्रसाद)

यहाँ वार्तालाप का अंश प्रधानतः चरित्र-चित्रण में सहायक हुआ है। प्रेमचन्द जी की कहानी के निम्न उद्धरण में वार्तालाप द्वारा घटनाओं को गतिशील बनाने में मदद मिली है।

(ख) "उसने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और टोकरी को उठाकर बोली—"तुझसे किसने पीसने को कहा है ? किसका अनाज पीस रही है ?"

सिलिया ने निश्शंक होकर कहा—तुम जाकर आराम से सोतीं क्यों नहीं। मैं पीसती हूँ तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है ! चक्की की घुमुर-घुमुर भी नहीं सही जाती ? लाओ टोकरी दे दो। बैठे-बैठे कब तक खाऊंगी, दो महीने तो हो गए।

"मैंने तो तुम से कुछ नहीं कहा।"

"तुम कहो चाहे न कहो, अपना धरम भी तो कुछ है।"

"तू अभी यहाँ के आदमियों को नहीं जानती। आटा पिसाते तो सब को अच्छा लगता है। पैसे देते रोते हैं। किसका गेहूँ है? मैं सवेरे उसके सिर पर पटक आऊँगी।"

सिलिया ने रुक्मिन के हाथ से टोकरी छीन ली और बोली—"पैसे क्यों न देंगे। कुछ बेगार करती हूँ।"

"तू न मानेगी?"

"तुम्हारी लौंड़ी बनकर न रहूंगी।"

यह तकरार सुनकर पयाग भी आ पहुंचा और रुक्मिन से बोला—"काम करती है तो करने क्यों नहीं देती। अब क्या जन्म भर बहुरिया ही बनी रहेगी। हो तो गये दो महीने।"

"तुम क्या जानो? नाक तो मेरी कटेगी।"

सिलिया बोल उठी—"तो क्या कोई बैठे खिलाता है? चौका बरतन, झाड़ू-बहारू, रोटी-पानी, पीसना-कूटना, यह कौन करता है। पानी खींचते-खींचते मेरे हाथों में घट्टे पड़ गये। मुझ से अब यह सारा काम न होगा।"

पयाग ने कहा—"तो तू ही बज़ार जाया कर। घर का काम रहने दे। रुक्मिन कर लेगी।"

रुक्मिन ने आपत्ति की—"ऐसी बात मुंह से निकालते लाज नहीं आती। तीन दिन की बहुरिया बाज़ार में घूमेगी तो संसार क्या कहेगा?"

सिलिया ने आग्रह करके कहा—"संसार क्या कहेगा, क्या कोई ऐब करने जाती हूँ।"

('अग्नि-समाधि'—प्रेमचन्द)

ऊपर दिये गये दोनों उदाहरणों में शैली और पात्रों की वैयक्तिकता स्पष्ट है। अगर इन्हीं चरित्रों को केवल वर्णन द्वारा

प्रस्तुत किया जाता तो इनमें थोड़ा अन्तर प्रतीत होता। पूर्ण-रूप से वर्णनात्मक कहानी में भाषा का स्वच्छन्द प्रवाह नहीं बन पाता। इसके सिवाय आरम्भ से अन्त तक पात्रों की वाणी भी नहीं सुनाई पड़ती, केवल लेखक का व्यक्तित्त्व उभर कर सामने आता है, जिससे कहानी शिथिल मालूम पड़ती है।

वार्तालाप कभी निरर्थक नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए वर्णन द्वारा कोई बात उपस्थित नहीं की—वार्तालाप चला दिया। वार्तालाप की जड़ें कथानक में गहरी जानी चाहिएँ। वार्तालाप उसी स्थल पर उपयुक्त जान पड़ता है, जहाँ पर कहानी का वातावरण देखते हुए, पात्रों का उस स्थिति में वार्तालाप का प्रयोग स्वाभाविक ही नहीं; किन्तु अनिवार्य जान पड़ता है।

कहानी उस समय उबा देने वाली लगती है, जब पात्र ग्रामोफोन की तरह बोलते हैं। कुछ अपनापन नहीं, आरम्भ से अन्त तक वही साँचे में ढला हुआ एक ही प्रकार का वाक्य विन्यास! कहानी अरुचिकर न हो तो क्या हो?

मनोभावों के अनुसार ही वार्वालाप का स्वरूप बनना चाहिए। जैसे, दार्शनिक मूड में अथवा क्रोधावेश में लम्बे-लम्बे वाक्य—अभिभाषण की भाँति। किसी गहरी व्यथा में—गुमसुम! दूसरे के बहुत कुछ कहने पर हाँ, हूँ कर दिया; इसके बाद एकाएक फूट पड़ना। व्यंग्य और हँसी के समय—प्रश्नों और उत्तरों की झड़ी।

यहाँ पर बंग भाषा के प्रसिद्ध लेखक शरदचन्द्र के उपन्यासों से कुछ उद्धरण दिए जाते हैं। कहानी और उपन्यास की अलग

अलग टेकनिक है; किन्तु वार्तालाप की दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं। पाठक इन उदाहरणों की विशेषता का मनन करते हुए ऊपर वाले पैराग्राफ का भी ध्यान रखें।

क्रोधावेश में वार्तालाप का स्वरूप—

"जिस लाठी के प्रहार से जीजी बेहोश हो गईं थीं, उसे उठाकर एक तरफ रखते हुए, इन्द्र बोला—"कैसा नमकहराम शैतान है यह साला! मैंने इसे अपने पिता के न जाने कितने रुपये चुराकर दिए हैं, और यदि जीजी ने सिर की कसम खा कर न टोका होता तो और देता, इतने पर भी यह मुझे बर्छा मार बैठा। श्रीकान्त इसपर नज़र रख जिससे यह उठ न बैठे। मैं जीजी की आँखों और चेहरे पर जल के छींटे देता हूँ।"

पानी के छींटे देकर हवा करते हुए वह बोला—"जिस दिन जीजी ने कहा—इन्द्रनाथ, तेरे कमाये हुए पैसे होते तो मैं ले लेती, किन्तु इन्हें लेकर मैं अपना इहलोक, परलोक न बिगाड़ूँगी—उस दिन से इस शैतान के बच्चे ने उन्हें कितनी मार मारी है, इसका कोई हिसाब नहीं। इतने पर भी जीजी लकड़ी ढोकर, कन्डे बेंचकर किसी तरह इसे खिलाती-पिलाती हैं, गांजे के लिए पैसे दे देती हैं। फिर भी यह उनका अपना न हुआ। किन्तु, अब मैं इसे पुलिस के हाथ दे दूँगा, तब छोड़ूँगा—नहीं तो यह जीजीका खून कर डालेगा, यह खून कर सकता है!"

('श्रीकान्त'—प्रथम पर्व)

गहरी व्यथा में वार्तालाप का स्वरूप—

वृद्ध ससुर चटर्जी महाशय की सज्जनता पर एक, पूरी स्पीच दे डालते हैं। ज्ञानदा चुपचाप सब सुनती रहती है।

"ज्ञानदा अब तक बिलकुल चुपचाप खड़ी थी, अकस्मात् फक चेहरे से बोल उठी—"चटर्जी जीजा ने कही है यह बात? अभी तुरन्त भेज देंगे! आज ही!"

सौदामिनी ने खुश होकर कहा–"हाँ कहेंगे क्यों नहीं! बल्कि उन्होंने यहां तक कह दिया कि खा-पीकर चल दीजिये तो तीन बजे की गाड़ी मिल जायगी और आसानी से कल सवेरे अपने घर पहुँच जाँयगे। इसके सिवाय जब घर में मरणासन्न रोगी पड़ा है, तब कहीं क्या एक दिन की भी देरी की जा सकती है? बहू जी! बेचारी बूढ़ी सास तो दिन रात हाय-हाय करके तुम्हारी बाट जोह रही है।"

ज्ञानदा मानो मशीन की पुतली की तरह सिर्फ अपनी पहली कही हुई बात दोहरा सकी। बोली—"उन्होंने कहा है भेज देंगे? आज ही?"

('बाम्हन की बेटी')

पात्रों की रहन-सहन, उनकी शिक्षा-दीक्षा, वयस—इन सब बातों का भी वार्तालाप पर भी प्रभाव पड़ता है। अगर कोई कर्ल्क है तो वह सदैव अपने साहब और दफ्तर की बातें करेगा। इसी प्रकार व्यवसायी घाटे-मुनाफे के हिसाब से प्रत्येक चीज़ का मूल्य आँकता है।

शिक्षा-दीक्षा तथा अन्य ऐसी बातों को वार्तालाप द्वारा कैसे स्पष्ट किया जाता है! निम्न उदाहरण में देखिये—

"परन्तु, दूसरे ही क्षण उसने अपने स्वर को अनिवर्णनीय कौशल के साथ ऊँचे सप्तक से एक दम नीचे उतार कर (वह) जगद्धात्री को संबोधित करके कहने लगी—"बेटी, मैंने अच्छी ही बात कही थी। मंगलवार के दिन कुसमय में लड़की बकरी की रस्सी लांघ गई। वही मैंने कहा, अहा! किसने इस तरह यहाँ रास्ते में बकरी बांध दी, भाई? बस, इतना सुनना था, दूले की छुकड़िया दौड़ी आई और बच्ची के मुँह पर घुमाकर आंचल मार ही तो दिया, उसने! बोली, ठाकुर महाशय की जमीन पर बकरी बांधी है, तुम बोलनेवाली कौन? सो बेटी, तुम्हारी

लड़की को बुलाकर वही सब कहने आई थी कि देखो इतने अबेर में बच्चीको नहलाना पड़ेगा, मंगल के दिन बकरी की रस्सी लांघ गई। सो यदि तुम्हारे पिता को यहां दूले-फूले का परिवार रखना ही है, तो उनसे कह दें, कि बकरी-अकरी ज़रा देख-भालकर बाँधनी चाहिए। छोटी जाति को कुछ आचार-विचार है ही नहीं। नहीं तो चटर्जी भय्या बूढ़े आदमी ठहरे; इसी रास्ते से अक्सर निकला करते हैं, फिजूल में गुस्सा हो जाँयगे। बस बेटी, इतना ही कहना था! इसी पर तेरी लड़की ने बस मारना भर छोड़ा है। कहती है—जा, जा अपने चटर्जी भय्या को बुला ला, उसके जैसे बड़े आदमी मैंने बहुत देखे हैं। जब उसके बाप की जमीन पर दूले वगैरः बसने जायँ तब वो शासन करने आवें। अच्छा बेटी, तुम्हीं बताओ, यह क्या लड़की के कहने की बाते हैं?"

जगद्धात्री ने आग बबूला होकर कहा—"कहीं हैं ये सब बातें?"

संध्या अब तक निर्वाक विस्मय के साथ रासमणि का मुँह निहार रही थी। माँ की आवाज़ सुन कर चौंक पड़ी और गर्दन फेर कर सिर्फ इतना ही बोली—"नहीं।"

"नहीं कहा? तो क्या मौसी झूठ बोल रही हैं?"

"हाँ, बेटी, एक बार अपनी लड़की से पूछ तो यही बात!"

क्षण-भर मौन रह कर संध्या ने माँ के प्रश्न का उत्तर दिया—"मैं नहीं जानती माँ किसकी बात झूठी है। लेकिन अगर तुमने अपनी लड़की की अपेक्षा इन मानी हुई मौसी को ही ज़्यादा पहचाना हो तो ऐसा ही सही।" इतना कहकर वह दूसरे प्रश्न के पहले ही दरवाजा खोल कर तेजी से भीतर चली गई।"

('बाम्हन की बेटी')

भावात्मक कहानियाँ एक अलग ही कोटि की होती हैं, इसलिए उनकी परख की कसौटी भी दूसरी है। उन्हें साधारण मनोविज्ञान

की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है, क्योंकि वे काव्यात्मक अधिक हैं, इसलिए उनके वार्तालाप का चुनाव भी इसी दृष्टिकोण से होता है। बहुत से पाठक इस अन्तर को न समझ सकने के कारण कह उठते हैं कि इस कहानी का वार्तालाप अस्वाभाविक है।

उदाहरण—

"धीवरबाला आकर खड़ी हो गई। बोली—"मुझे किसने पुकारा।"

"मैंने।"

"क्या कहकर पुकारा?"

"सुन्दरी।"

"क्यों मुझ में क्या सौन्दर्य है? और है भी कुछ, तो क्या तुम से विशेष?"

"हाँ, आज तक किसी को सुन्दरी कहकर नहीं पुकार सका था; क्योंकि यह सौन्दर्य-विवेचना मुझ में अब तक नहीं थी।"

"आज अकस्मात् यह सौन्दर्य-विवेक तुम्हारे हृदय में कहाँ से आया?"

"तुम्हे देखकर मेरी सोई हुई सौन्दर्य तृष्णा जाग गई।"

('समुद्र-संतरण'—प्रसाद)

धीवरबाला का यह वार्तालाप सम्भवतः कुछ पाठकों अथवा समालोचकों को अस्वाभाविक लगे, खटके; किन्तु कहानी का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् पता लगेगा कि कवितामय सृष्टि के लिए यहाँ पर यह कितना उपयुक्त है।

कुछ लोग भूमिका के साथ वार्तालाप चलाते हैं। जैसे, 'आप बड़े हास्यप्रिय और वाकपटु हैं'—यह लिखने के बाद वार्तालाप में इसका परिचय देना। इस तरह पात्रों का परिचय प्रभावशाली

नहीं बनता। आदमी ऐसा है, उसकी बातचीत उसके व्यवहार से पता लग जायगा।

वार्तालाप कभी भी पूर्णरूप से स्वाभाविक नहीं हो सकता। अगर प्रति दिन के जीवन का वार्तालाप जैसे का तैसा कहानियों में रख दिया जाय तो प्रायः ठीक नहीं उतरेगा। उस पर रंगा-मेज़ी और 'पालिश' की आवश्यकता रहती है।

बहुधा परिचितों को देखने से पूर्व ही उनकी आवाज सुनकर उन्हें पहचान लिया जाता है। कहानियों के पात्रों के वार्तालाप में भी जब यह विशेषता आ जाय तभी उनकी सफलता है।

भाषा और शैली

कहानियाँ पढ़ते समय बहुधा पाठकों का ध्यान लेखक के विचारों पर ही केन्द्रित रहता है। उन विचारों का निर्माण कैसे होता है, इस पर प्रायः उनकी दृष्टि नहीं जाती।

संसार के मनुष्यों की भाँति शब्द-कोष में शब्दों का भी अलग अलग व्यक्तित्त्व होता है। प्रत्येक शब्द एक विशिष्ट भाव का प्रतीक है। कुछ शब्द कोमल प्रकृति के होते हैं, कुछ उग्र प्रकृति के। कोई शब्द कर्ण-कटु होता है, कोई कर्ण-प्रिय और संगीतमय ! शब्दों का वास्तविक सौंदर्य तभी प्रकट होता है, जब उनका प्रयोग उनके वास्तविक अर्थ में होता है।

भाषा और शैली का एक मात्र उद्देश्य है कि लेखक अपनी गूढ़ से गूढ़ भावनाएँ खूब स्पष्ट रूप में रोचकता के साथ व्यक्त कर सके। उचित शब्दों के चुनाव से ही यह क्षमता प्राप्त होती है।

भाषा और शैली के यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

(क) "ये लोग सम्भ्रान्त कुलपुत्र थे। कुछ गंभीर विचारक से वे युवक देव-गन्धर्व की तरह रूपवान थे। लम्बी-चौड़ी हड्डियोंवाले व्यायाम से सुन्दर शरीर पर दो एक आभूषण और काशी के बने हुए उत्तरीय रत्न-जटित कटिबन्ध में कृपाणी। लच्छेदार बालों के ऊपर सुनहरे पतले पट्टबन्ध और वसन्तोत्त्सव के प्रधान चिन्ह स्वरूप दूर्वा और मधूक-पुष्पों की सुरचित मालिका। उनके मांसल भुजदण्ड, कुछ कुछ आसव-पान से

अरुण-नेत्र, ताम्बूल-रंजित सुन्दर अधर, उस काल के भारतीय शारीरिक सौन्दर्य के आदर्श प्रतिनिधि थे।"

(ख) "सालवती ने एक नवीन कौशेय पहना, जूड़े में फूलों की माला लगाई और रथ के समीप जा पहुँची।"

(ग) "वे बोलने से पहले थोड़ा मुस्कराते, फिर मधुर शब्दों में अपने भावों को अभिव्यक्त करते थे।"

ऊपर दिये गये सभी उदाहरण एक पूरा चित्र बनाते हैं, लेकिन सब एक दूसरे से भिन्न हैं। (क) का चित्र बहुत सघन है। लेखक ने नख-शिख का वर्णन किया है, बीच में कोई जगह खाली नहीं है। (ख) का चित्र केवल संकेत देता है। जैसे कोई चित्रकार 'कन्वास' पर दो तीन रेखाएँ खींच दे और उनमें से कोई आकृति झाँकने लगे। इसमें चित्र के सब अंगों को नहीं भरा गया है। केवल डेढ़ दर्जन शब्दों में सालवती का कौशेय पहनना, जूड़े में फूलों की माला लगाना और रथ की ओर जाना—तीन प्रथक कार्य सिनेमा की तसवीरों की भाँति आँखों के सामने फिर जाते हैं। (ग) का चित्र एक दम भावनात्मक है। कोई स्थूल दृश्य नहीं बनता, फिर भी अन्तस्तल में लेखक का भाव अच्छी तरह अंकित हो जाता है।

शब्दों के थोड़े ही हेर फेर में भावना-चित्रों की अलग अलग सृष्टि होती है। कहानी को प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा की शक्ति का ज्ञान आवश्यक है।

पात्रों का, उनके कार्यों का अथवा घटनाओं का वर्णन करते हुए प्रायः सादे शब्दों के साथ ही अलंकारों, उपमाओं, उदाहरणों,

मुहावरों, लोकोक्तियों और अनुप्रासों का पुट दे दिया जाता है। इससे चित्र को बोधगम्य बनाने में सहायता मिलती है। भाषा में भी विशेष चमक आ जाती है। उदाहरणों की अपेक्षा, उपमाएँ अधिक प्रभावशाली होती हैं; क्योंकि असादृश्य वस्तुओं में भी सादृश्य भाव प्रकट करती हुई, वे दृश्य-विभेद से पाठकों को मुग्ध कर लेती हैं।

ऊपर दिये गये सभी उदाहरणों में सादे शब्दों का प्रयोग है। (क) के 'देव-गन्धर्व की तरह रूपवान थे' तथा 'आसव पान से अरुण नेत्र'—उदाहरण में केवल दो उपमाएँ आई हैं।

निम्न उद्धरण उपमाओं और अलंकारों से बने हुए चित्र का नमूना है।

"जाह्नवी अपने बालू के कम्बल में ठिठुर कर सो रही थी। शीत कुहासा बनकर प्रत्यक्ष हो रहा था। दो-चार लाल धाराएँ प्राची के क्षितिज में बहना चाहती थीं।" ('भिखारिन'—प्रसाद)

'बालू का कम्बल' केवल भावना जगत में ही सम्भव हो सकता है। अगर इस अलंकार के स्थान पर उदाहरण से काम लिया जाता—'जाह्नवी अपने बालू के तटों में उसी तरह ठिठुर रही थी, जैसे कोई शीत का भिखारी अपने झीने कम्बल में'। यह स्पष्ट है कि उदाहरण का प्रयोग यहाँ पर चित्र को भ्रष्ट कर देता है। अगली पंक्तियाँ अलंकार से बनती है—'शीत कुहासा बनकर प्रत्यक्ष हो रहा था।' लेखक का आशय शीतकाल तथा कुहासा पड़ने से है। लेकिन यही भाव सांकेतिक रूप में व्यक्त

किया गया है। 'कुहासा' शब्द से अर्थ के अतिरिक्त कुहासा पड़ने के समय का भी ज्ञान होता है। अगली पंक्ति में 'समय' को और अधिक स्पष्ट किया गया है—'दो-चार लाल धाराएँ प्राची के क्षितिज में बहना चाहती थीं।' लेखक फिर नहीं बताता कि प्रातः काल है और पानी पर सूर्योदय की आभा है।

प्रेमचन्द जी की भाषा मुहावरों और लोकोक्तियों से रंगीन बनती है। देखिए—

"मैं शहसवार नहीं हूँ। हाँ लड़कपन में कई बार लद्दू घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा दो कलाँ-रास घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गई। सवार तो हुआ; पर बोटियाँ काँप रही थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दिया। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़े को तेज़ न किया, वरना शायद मैं हाथ पाँव तुड़वा कर लौटता। सम्भव है, ईश्वरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी में है।" ('नशा'—प्रेमचन्द)

"रघू ने ठंढी सांस खींचकर कहा—मुलिया, घाव पर नोन न छिड़क। तेरे ही कारन मेरी पीठ में धूल लग रही है। मुझे इस गृहस्थी का मोह न होगा, तो किसे होगा? मैंने ही तो इसे मर-मर जोड़ा है। जिनको गोद में खिलाया, वही अब मेरे पट्टीदार होंगे। जिन बच्चों को मैं डाँटता था, उन्हें आज कड़ी आँखों से भी नहीं देख सकता। मैं उनके भले के लिए भी कोई बात करूं, तो दुनिया यही कहेगी कि यह अपने भाइयों को लूटे लेता है। जा मुझे छोड़ दे, अभी मुझसे कुछ न खाया जायगा।"

('अलग्योझा'—प्रेमचन्द)

अध्ययनशील पाठकों के लिए ऊपर दिये गये उदाहरणों में आये हुए लोकोक्तियों और मुहावरों के नीचे लाइनें खींच दी गई हैं।

उग्रजी की भाषा में अनुप्रास की छटा रहती है। देखिए

"एक दिन मनुष्य के मनोमन्दिर में मशहूर—जहान श्रीमान् भगवान् की भक्ति जोर-शोर से भभक उठी।

अभाव से कि भाव से ? किस प्रभाव से भगवान् की भक्ति भभकी ? इनसान के स्वभाव में इसका कुछ भी ज्ञान या भान न हो सका।

वह तो आँख मूंद कर इस अन्धकार में भी सरपट !—भगवान के अनुसन्धान में हैरान—परीशान दौड़ने लगा !"

('प्रार्थना'—उग्र)

पहली पंक्ति के आरम्भ वाली लाइन—, 'मनुष्य के मनोमन्दिर में मशहूर', इसमें 'म' का चमत्कार है। इसके बाद 'जहान', 'श्रीमान्' और 'भगवान' शब्दों में 'हान', 'भान', 'वान', की ध्वनि पर ध्यान दीजिए। इसी प्रकार अगली पंक्तियों में भी।

आवश्यकता से अधिक उपमाओं, अलंकारों, मुहावरों तथा अनुप्रासों के प्रयोग से भी भाषा भारावनत हो जाती है। जिस स्थल पर सादे शब्दों में ही लेखक का भाव भलीभाँति व्यक्त हो सकता है, वहाँ आलंकारिक भाषा कृत्रिम लगने के साथ ही, कहानी के प्रभाव को नष्ट कर देगी।

कुछ समय बाद एक ही प्रकार के अलंकारों और उदाहरणों की नवोनता चली जाती है। अच्छी भाषा-बनाने के लिए, यह आवश्यक है कि सदैव नई उपमाओं और नये उदाहरणों का

प्रयोग हो। पुराने सिक्कों की ही भाँति, पुराने शब्द भी नये ढाँचे में ढालने पर नये हो जाते हैं।

विचारों में कभी नवीनता नहीं होती। लेखक अपने युग के विचारों को ही अपनी रचनाओं में प्रतिध्वनित करता है। केवल उसके लिखने का ढंग ही उसका है। लेखक का नाम न भी दिया हो, उसकी शैली की विशेषता से ही पता लग जाता है कि अमुक की रचना है।

कहानियों के विषय के अनुसार ही उनकी लेखन-शैली का भी निर्णय होता है। उदाहरण के लिए घटना प्रधान कहानियों में वेगवती नदी जैसी भाषा का प्रयोग वांछित है, जो पहली ही पंक्ति से ही ध्यान आकर्षित कर ले और कहानी समाप्त होने पर ही पाठक सांस ले सकें।

घटना प्रधान शैली—

"हूँ-ऊँ, हूँ-ऊँ, हूँ-ऊँ के वज्र-निनाद से सारा जंगल दहल उठा।

उस गंभीर, भयावनी ध्वनि ने तीन बार, और उसकी प्रतिध्वनि ने सात-सात बार सातों पर्वत-श्रेणियों को हिलाया। और, जब यह हु-हुँकार शांत हुआ, तब निशीथ का सन्नाटा छा गया; क्योंकि पशु-पक्षी किसी की मजाल न थी कि जरा सकपकाता भी।

अब केसरी ने एक बार दर्प से आकाश की ओर देखा, फिर गरदन घुमा-घुमा कर अपने राज्य—वन-प्रांत—की चारों सीमाओं को परताल डाला। उसके घुँघराले केश उसके प्रपुष्ट कंधों पर इठला रहे थे। वह अकड़ता हुआ, डँकारता हुआ, निर्द्वन्द्व मस्तानी चाल से उस टीले के नीचे उतरने लगा, जिसपर से उसने अभी-अभी गर्जना की थी।

उसने एक बार अपनी पूँछ उठाई। उसे कुछ क्षण चँवर की तरह डुलाता रहा, फिर नीचे करके एक बार सिंहावलोकन करता हुआ चलने लगा। उसके घुटनों की धीमी चड़्मड़ भी जी दहला देनेवाली थी।"

('अन्तःपुर का आरंभ'—राय कृष्णदास)

भावना प्रधान कहानियों में अन्य प्रकार की शैली का प्रयोग होता है।

भावना प्रधान शैली—

"तुम उसका (पद्मा का) रूप-सौन्दर्य पूछते हो, मैं उसका विवरण देने में असमर्थ हूँ—हृदय में उपमाएँ नाचकर चली जाती हैं, ठहरने नहीं पातीं कि मैं उन्हें लिपि-बद्ध करूँ। वह एक ज्योति है, जो अपनी महत्ता और आलोक में अपना अवयव छिपाये रखती है। केवल तरल, नील, शुभ्र और करुण आँखें मेरी आँखों से मिल जाती हैं; मेरी आँखों में श्यामा कादम्बिनी की शीतलता छा जाती है।"

('देवदासी'—प्रसाद)

"वैशाख की चाँदनी थी। झील के किनारे मौलसिरी के नीचे कौवालों का जमघट था। लोग मस्ती में झूम-झूमकर गा रहे थे।

'मैने अपने प्रियतम को देखा था।'

'वह सौंदर्य—मदिरा की तरह नशीला, चाँदनी-सा उज्ज्वल, तरंगों-सा यौवन-पूर्ण और अपनी हँसी-सा निर्मल था।'

'किन्तु हलाहल भरी उसकी अपांगधारा! आह निर्दय!'

'मरण और जीवन का रहस्य उन संकेतों में छिपा था।'

'आज भी न जाने क्यों भूलने में असमर्थ हूँ।'

'कुंजों में फूलों के झुरमुट में तुम छिप सकोगे। तुम्हारा वह चिर विकासमय सौंदर्य! वह दिगन्तव्यापी सौरभ! तुमको छिपने देगा?'

'मेरी विकलता को देखकर प्रसन्न होनेवाले! मैं बलिहारी!'

नूरी वहीं खड़ी होकर सुन रही थी। वह कौवालों के लिए भोजन लिवा कर आई थी। गाढ़े का पायजामा और कुर्ता, उसपर गाढ़े की ओढ़नी। उदास और दयनीय मुख पर निरीहता की शांति ! नूरी में विचित्र परिवर्त्तन था। उसका हृदय अपनी विवश पराधीनता भोगते-भोगते शीतल और भगवान की करुणा का अवलम्बी बन गया था। जब संत सलीम की समाधि पर वह बैठकर भगवान की प्रार्थना करती थी, तब उसके हृदय में किसी प्रकार की सांसारिक वासना या अभाव-अभियोग का योग न रहता।

"आज न जाने क्यों इस संगीत ने उसकी सोई हुई मनोवृत्ति को जगा दिया। वही मौलसिरी का वृक्ष था। संगीत का वह अर्थ चाहे किसी अज्ञात-लोक की परम सीमा तक पहुँचता हो; किन्तु आज तो नूरी अपने संकेत-स्थल की वही घटना स्मरण कर रही थी, जिसमें एक सुन्दर युवक से अपने हृदय की बातों को खोल देने का रहस्य था।"

('नूरी'—प्रसाद)

ऊपर दिये गये दोनों चित्रों का घटना प्रधान शैली के गद्य से मिलान करने पर दोनों की निर्माण-कला स्पष्ट हो जायगी। घटना प्रधान शैली में चीजों को उनके वास्तविक रूप में चित्रित किया जाता है। इसलिए उसमें एक कठोरता झलकती है। भावना प्रधान शैली स्मरणशील होने के कारण हृदय-तंत्री के कोमल तारों को झंकृत करती है। प्रायः उसमें जीवन के अभाव का अथवा स्थिति के परिवर्त्तन का दिग्दर्शन रहता है। चित्रों में एक तरलता छलकती है, जिससे वे पूरी तौर से रेखा-बद्ध नहीं हो पाते। कुछ-अव्यक्त भाव शेष रहता है। वे पाठकों को एक स्वप्न-लोक में छोड़ जाते हैं।

'देवदासी' की पद्मा का चित्र अंकित करते हुए पहले विवरण देने में असमर्थता दिखाई गई है। इसके बाद उसकी तुलना एक ज्योति से की जाती है, जो अपनी महत्ता और आलोक में अपना अवयव छिपाये रखती है। आँखों से आँखें मिलने का उल्लेख होने पर, एक स्थूल चित्र विकसित होता है; लेकिन अगली ही पंक्ति में उसकी उपमा कादम्बिनी की शीतलता से दी जाती है, जिससे फिर कोई स्थूल चित्र नहीं बन पाता। इसके साथ 'अन्तःपुर का आरम्भ' शीर्षक कहानी के वनराज-केसरी का चित्र मिलाइये। 'उसके घुँघराले केश उसके प्रपुष्ट कंधोंपर इठला रहे थे। वह अकड़ता हुआ, डँकराता हुआ, निर्द्वन्द्व मस्तानी चाल से उस टीले से नीचे उतरने लगा, जिस पर से उसने अभी-अभी गर्जना की थी।' पूरा चित्र सम्पूर्ण भाव से अंकित होता है, कहीं कोई छूटी हुई जगह नहीं।

'नूरी' वाला उद्धरण स्मरणशील होने के कारण, भावात्मक बन पड़ा है। लोग मस्ती में झूम-झूम कर गा रहे थे। संगीत का वह अर्थ चाहे किसी अज्ञात लोक तक पहुँचता हो; किन्तु नूरी को तो वही घटना स्मरण हो रही थी, जिसमें एक सुन्दर युवक से अपने हृदय की बातें खोल देने का रहस्य था। इसके साथ ही नूरी की निरीहता का, उसके उदास और दयनीय मुख का चित्र सामने आता है।

एक ही शैली की कहानी में प्रसंगों के अनुसार भाषा की ध्वनि बदलती रहतो है—कहीं व्यंग्य, कहीं हास्य। अलग-अलग भावों का

उद्रेक करने के लिए उसी प्रकार के वाक्य-रचना की आवश्यकता होती है।

व्यंग्य-पूर्ण वाक्य रचना का उदाहरण—

"घर बगल में होने के कारण, घर बैठे हुए ही मालूम कर लिया कि चतुरी चतुर्वेदी आदिकों से संत-साहित्य का अधिक मर्मज्ञ है, केवल चिट्ठी लिखने का ज्ञान न होने के कारण एकक्रिय होकर भी भिन्न फल है—वे पत्र और पुस्तकों के सम्पादक हैं, यह जूतों का।"

('चतुरी चमार'—निराला)

हास्य-पूर्ण वाक्य रचना का उदाहरण—

"द्वारिका नाई न्योता बाँटता हुआ दो साल में दो हज़ार कोस से ज्यादा चलता है, चतुरी के जूते अपरिवर्त्तनवाद के चुस्त रूपक जैसे टस-से-मस नहीं होते। यह ज़रूर है कि चतुरी के जूते जिला बाँदा के जूतों से वज़न में हल्के बैठते हैं; सम्भव है, चित्रकूट के इर्द-गिर्द होने के कारण वहाँ के चर्मकार भाइयों पर रामजी की तपस्या का प्रभाव पड़ा हो, इसलिए उनका साहित्य ज्यादा ठोस हुआ; चतुरी वगैरह लखनऊ के नज़दीक होने के कारण नव्वाबों के साये में आए हों।"

('चतुरी-चमार'—निराला)

व्यंग्य अथवा हास्य-पूर्ण वाक्य-रचना के लिए स्थिति की विषमता का खूब स्पष्ट रूप से प्रदर्शन किया जाता है। पहले उदाहरण में एक-क्रिय होकर भी भिन्न फल होने का दृष्टान्त है। छिपे तौर पर सम्पादक-समुदाय पर आक्षेप है—केवल चिट्ठी लिखने का ज्ञान न होने के कारण, एक जूतों के सम्पादक। दूसरे उदाहरण में शब्दों का चमत्कार है। 'दो साल में दो हज़ार कोस'

लिखने में कोई अतिरंजन नहीं, केवल बात नये ढंग से कही गई है। इसी तरह अगली पंक्ति में तपस्या के प्रभाव और नव्वाबों के साये को लेकर हास्य की सृष्टि हुई है।

भाषा और शैली के साथ ही साथ विराम-चिन्हों का ध्यान रखना आवश्यक है। विराम-चिन्हों का उपयोग अर्थ को सहज भाव से स्पष्ट करने के लिए होता है। बहुत सी व्यर्थ की संधियों को विराम-चिन्ह का ज्ञान होने के कारण हटाया जा सकता है। भाषा को चुस्त और रोचक बनाने में भी इससे सहायता मिलती है।

कहानी को छोटे छोटे पैराग्राफों में विभाजित कर देने से छपने पर वह नेत्ररंजक मालुम पड़ती है। पैराग्राफों का एक दूसरे से सुसम्बद्ध होना आवश्यक है।

कहानी का विश्लेषण

इस अध्याय में हम प्रसाद जी की 'आकाश-दीप' शीर्षक कहानी का विश्लेषण करेंगे। कहानी-कला के सम्बन्ध में उस प्रकार के कोई निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते, जैसे विज्ञान में बनाये जाते हैं। हम आसानी के लिए कहानी को प्लाट, रचना-क्रम, चरित्र-चित्रण, वार्तालाप, भाषा-शैली आदि विभागों में विभाजित करते हैं। लेकिन वास्तव में कहानी के ऐसे कोई विभाग नहीं हैं। सम्पूर्ण कहानी का एकमात्र ध्येय रहता है, पाठकों में कोई विशिष्ट भावना संचारित करना। इसी उद्देश्य से कहानी की सामग्री प्रस्तुत की जाती है। कहानी-कला का ज्ञान प्राप्त करने लिए उसकी सामग्री को अलग-अलग अंशों में विभाजित करके उसके अध्ययन करने में सुविधा होती है।

कहानी का विश्लेषण करने पर पाठकों को इसका पूर्ण अनुभव हो जायगा कि उसकी रचना कैसे होती है। कहानी-कला में किन उपकरणों का समावेश कहाँ पर होना चाहिए, सिद्धान्त-रूप में इसका वर्णन नहीं हो सकता। उदाहरण देना ही अधिक उपयुक्त होगा।

कहानी की 'टेकनिक' समझने के लिए कम-से-कम पाँच-छ बार उसका अध्ययन करना आवश्यक है। कहानी में एक शब्द भी निरर्थक नहीं होता, इसलिए जब तक उसकी प्रत्येक पंक्ति की शब्दयोजना का रहस्य प्रकट न हो जाय तब तक उसका अध्ययन पूर्ण नहीं होता।

हमने आकाश-दीप कहानी के विशेष स्थलों पर संकेत मात्र दे दिया है। पाठकों को स्वयं कहानी का विश्लेषण करके उसके सौन्दर्य को देखना चाहिए, इसके बाद पिछले अध्यायों में उल्लिखित बातों का ध्यान रखते हुए संकेतों के साथ कहानी का अध्ययन किया जा सकता है।

आकाश-दीप

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं—निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ; धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

वार्तालाप द्वारा क्रियात्मक रूप से आरम्भ। ध्यान दीजिए—वार्तालाप किस स्वाभाविक गति से आगे बढ़ता है। कहानी के प्रमुख चरित्रों का आभास मिलता है।

प्लाट का प्रस्तावना भाग।

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं । दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा । लहरों के धक्के एक दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा—स्नेह का असम्भावित आलिंगन। दोनों ही अन्धकार में मुक्त हो गये । दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से, उसको गले से लगा लिया । सहसा उस बन्दी ने कहा—"यह क्या ? तुम स्त्री हो ?"

कहानी के चरित्रों का परिचय।

"क्या स्त्री होना कोई पाप है ?"—अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा ।

"शस्त्र कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?"

"चम्पा ।"

प्लाट का प्रस्तावना भाग ।

तारक-खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से

वातावरण। भाषा-शैली की विशेषता—'पवन', 'दुष्ट', 'उधम', नौका 'विकल'।

उसका कृपाण निकाल कर, फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत के पथदर्शक ने चिल्ला कर कहा—
"आँधी!"

आपत्ति-सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बन्दी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बन्दी ढुलक कर उस रज्जु के पास पहुँचा, जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कन्दुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

परिवर्तन की स्थिति का आरम्भ।

भाषा-शैली की विशेषता—समुद्र 'गरजने', आँधी 'पिशाचिनी', 'कन्दुक-क्रीड़ा', 'अट्टहास'।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतन्त्र थी। उस संकट में भी दोनों बन्दी खिलखिला कर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

परिवर्तन की स्थिति की दूसरी गति।

२

अनन्त जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी।

भाषा-शैली की विशेषता—सृष्टि 'मुस्कराने', 'सागर शान्त'।

सागर शान्त था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बन्दी मुक्त हैं।

नायक ने कहा—"बुद्धगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया ?"

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा—"इसने।"

नायक ने कहा—"तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊँगा।"

"किसके लिये ? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।"

परिवर्तन की स्थिति की तीसरी गति। प्लाट के प्रस्तावना भाग की सामग्री भी साथ है—'जलदस्यु बुद्धगुप्त', 'पोताध्यक्ष मणिभद्र'।

"तुम! जलदस्यु बुद्धगुप्त! कदापि नहीं।"—चौंककर नायक ने कहा, और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वन्द्व-युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाओ। जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा।"—इतना कह, बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

वाक्य-रचना पर ध्यान दीजिये।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ।

परिवर्तन की स्थिति की अन्तिम गति।

दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतन्त्र कर लिये। चम्पा, भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाणवाला हाथ पकड़ लिया, और विकट हुङ्कार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कायर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगीं। बुद्धगुप्त ने कहा—"बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं?"

वाक्य-रचना पर ध्यान दीजिये।

"मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ, मैं विश्वासघात न करूँगा।"

मुख्यांश का आरम्भ।

बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया। चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-विन्दु विजय-तिलक कर रहे थे।

चरित्रों का विकास।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—"हम लोग कहाँ होंगे?"

"वाली द्वीप से बहुत दूर; सम्भवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हमलोगों का बहुत कम आना-जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।"

"कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिये खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी, और स्वयं पतवार पकड़ कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—"यहाँ एक जलमग्न शैलखण्ड है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।"

३

"तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जाह्नवी के तट पर, चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय-बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली। एक मास हुआ मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ, अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझ से एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बन्दी बना दी गई।"—चम्पा रोष से जल रही थी।

चम्पा का परिचय। प्लाट का प्रस्तावना भाग।

"मैं भी ताम्रलिप्ती का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी?"

बुद्धगुप्त का परिचय।

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही

रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।”—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। उनमें किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपाङ्ग में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर विलम्बमयी राग-रञ्जित सन्ध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक वरुण-बालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला।

चम्पा का चरित्र-चित्रण। साथ ही वर्णन पर भी ध्यान दीजिये। 'अदृष्ट', 'अनिर्दिष्ट' के साथ 'निस्सीम प्रदेश' में 'निरुद्देश्य'। प्लाट के प्रस्तावना भाग की सामग्री भी साथ है। चम्पा की आँखों का वर्णन—'धवल अपाङ्ग में बालकों के सदृश विश्वास था'।

बुद्धगुप्त के चरित्र का विकास।

वह थी—कोमलता!

उसी समय नायक ने कहा—“हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये।”

वेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। माँझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा—“जब इसका कोई

नाम नहीं है, तो हम लोग इसे चम्पा-द्वीप कहेंगे।"

प्लाट का प्रस्तावना भाग।

चम्पा हँस पड़ी।

४

पाँच वर्ष बाद—

शरद् के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे। चन्द्र के उज्ज्वल विजय पर अन्तरिक्ष में शरद्लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

भाषा-शैली पर ध्यान दीजिये—'आशीर्वाद के फूलों और खीलों'।

चम्पा के एक उच्च सौध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मञ्जूषा में दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उँगुलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं। डोरी धीरे-धीरे खींची गई। चम्पा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिल-मिल जाय; किन्तु वैसा होना असम्भव था। उसने आशा-भरी आँखें फिरा लीं।

वातावरण।

प्लाट का प्रस्तावना भाग—चम्पा की सुकुमार उँगुलियाँ।

चम्पा का चरित्र-चित्रण।

सामने जलराशि का रजत शृङ्गार था। वरुण बालिकाओं के लिये लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालायें बना रही थीं। और वे मायाविनी छलनायें अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों की वंशी की झनकार उनके सङ्गीत-सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल-सङ्कुल जलराशि में उसके कण्डील का प्रतिविम्ब अस्तव्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिये सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा—"जया!"

भाषा-शैली—जलराशि का 'रजत शृङ्गार'।

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभोमण्डल-से मुख में शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चम्पा को रानी कहती; बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।"—चम्पा ने कहा। जया चली गई।

मुख्यांश की घटना को उपस्थित करने से पहले का वातावरण।

दूरागत पवन चम्पा के अञ्चल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे चमत्कृत कर दिया। उसने फिरकर कहा—"बुद्धगुप्त !"

भाषा-शैली—पवन 'विश्राम'।

चरित्र-चित्रण।

"बावली हो क्या? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है?"

मुख्यांश की पहली घटना।

"क्षीरनिधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिये क्या दासियों से आकाश-दीप जलवाऊँ?"

चरित्र-चित्रण।

"हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान मान लिया है?"

"हाँ; वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य्य क्यों देते?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पा रानी!"

"मुझे इस बन्दीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में—तारिकाओं की मधुर ज्योति में—थिरकती थी। बुद्धगुप्त! उस विजन अनन्त में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम तुम परिश्रम से थक-कर पालों में शरीर लपेट कर एक दूसरे का मुँह क्यों देखते थे। वह नक्षत्रों की मधुर छाया—"

भावनात्मक गद्य-शैली।

"तो चम्पा! अब उससे भी अच्छे ढङ्ग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं, नहीं, तुमने दस्यु-वृत्ति तो छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान

के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-दीप पर व्यङ्ग कर रहे हो! नाविक! उस प्रचण्ड आँधी में प्रकाश की एक-एक किरणों के लिये हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में जलाकर भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती—"भगवान! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अन्धकार में ठीक पथ पर ले चलना।" और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते—"साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान ने भयानक सङ्कटों में मेरी रक्षा की है।" वह गद्गद् हो जाती। मेरी माँ! आह नाविक! यह उसी की पुण्य-स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ।"—सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रङ्ग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हँस पड़ा।

उत्तरोत्तर तीव्र स्थिति।

चरित्र-चित्रण।

"यह क्या चम्पा ? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।"—कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

५

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला से टकरा कर लहरें बिखर जाती हैं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शान्त गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

भाषा-शैली—'पश्चिम का पथिक' 'मुख पीला', 'विचार में निमग्न' 'विरक्त'।

चम्पा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं। तरङ्ग से उठते हुए पवन ने उनके वसन को अस्तव्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

"इतना जल ! इतनी शीतलता !!

हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं। तो जैसे वेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए उस स्वर्ण-गोलक के सदृश अनन्त जल में डूब कर बुझ जाऊँ?"— चम्पा के देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त विम्ब धीरे-धीरे सिन्धु में चौथाई—आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर चम्पा ने मुँह फिरा लिया। देखा तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुक कर हाथ बढ़ाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पास-पास बैठ गये।

चरित्र-चित्रण।

वाक्य रचना पर ध्यान दीजिये।

मुख्यांश की दूसरी घटना।

"इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैल-खण्ड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती, चम्पा, तो?"

"अच्छा होता बुद्धगुप्त! जल में बन्दी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है?"

"आह चम्पा, तुम कितनी निर्दय हो! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो,

वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिये नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है, नये राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो···। कहो चम्पा ! वह कृपाण से अपना हृदय-पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे !"— महानाविक—जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था—घुटनों के बल चम्पा के सामने छलछलाई आँखों से बैठा था।

बुद्धगुप्त का चरित्र-चित्रण।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में, विस्तृत जल-प्रदेश में नील पिङ्गल संध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्न-लोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्य-पूर्ण नील जाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिये। वहाँ एक आलिङ्गन हुआ, जैसे क्षितिज में

भावनात्मक गद्य शैली।

उत्तरोत्तर तीव्र स्थिति।

आकाश और सिन्धु का। किन्तु उस परिरम्भ से सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

"बुद्धगुप्त! आज मैं अपना प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया!"—चमक कर वह कृपाण समुद्र का हृदय वेधता हुआ विलीन हो गया।

"तो आज से मैं विश्वास करूँ, मैं क्षमा कर दिया गया?"—आश्चर्य-कम्पित कण्ठ से महानाविक ने पूछा।

"विश्वास! कदापि नहीं, बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ, ! मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु! तुम्हें प्यार करती हूँ।"—चम्पा रो पड़ी।

चम्पा के चरित्र का विकास।

वह स्वप्नों की रंगीन सन्ध्या, तम से अपनी आँखें बन्द करने लगी थी। दीर्घ निश्वास लेकर महानाविक ने कहा—

भाषा-शैली—संध्या, 'आँखें'।

"इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा चम्पा ! यहीं उस पहाड़ी पर। सम्भव है कि मेरे जीवन की धुँधली सन्ध्या उससे आलोक पूर्ण हो जाय।"

बुद्धगुप्त के चरित्र का विकास।

६

चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैल-माला थी—बहुत दूर तक सिन्धु-जल में निमग्न थी। सागर का चञ्चल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैल-माला पर चम्पा के आदि-निवासियों का समारोह था। उन सभों ने चम्पा को वनदेवी-सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत-से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वन-कुसुम-विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।

चम्पा के लिए प्रयुक्त विशेषणों पर ध्यान दीजिये—वनदेवी-सा सजाया, वन-कुसुम-विभूषिता। अप्रत्यक्ष रूप में चरित्र-चित्रण भी हुआ है।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चम्पा के नाविकों को सावधान करने के लिये सुदृढ़ दीप-स्तम्भ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तम्भ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता देकर चम्पा को उसने उतारा। दोनों

ने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम-भूषण से सजी वन-बालायें फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

वाक्य रचना पर ध्यान दीजिये।

दीप-स्तम्भ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा—"यह क्या है जया? इतनी बालिकायें कहाँ से बटोर लाई?"

"आज रानी का ब्याह है न?"—कहकर जया ने हँस दिया।

मुख्यांश की दूसरी घटना।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोरकर चम्पा ने पूछा—"क्या यह सच है?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती से दबाये हूँ।"

मुख्यांश की तीसरी घटना। उत्तरोत्तर तीव्र स्थिति।

"चुप रहो महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा?"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।"

क्लाइमेक्स का प्रथम परिचय।

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती ! बुद्धगुप्त ! वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते !"

जया नीचे चली गई थी। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चम्पा एकान्त में एक दूसरे के सामने बैठे थे।

बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिये। उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा—"चम्पा ! हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शची के समान पूजित हैं। पर न-जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किये है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा की प्रतिमा ! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता ? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कङ्गाल हूँ। मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्र-कान्त-मणि की तरह द्रवित हुआ।"

क्लाइमेक्स—तीव्रतम स्थिति।

"चम्पा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कराने लगी; पर पशु-बल और धन के उपासक के मन में किसी शान्त और कान्त कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।"

बुद्धगुप्त के चरित्र का रहस्योद्घाटन।

"चलोगी चम्पा! पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लाद कर राज-रानी-सी जन्मभूमि के अंक में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिये प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिन्धु की लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-पुञ्ज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देंगी। आह चम्पा! चलो।"

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिये। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लिये दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने कहा—"बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल हैं। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिये—और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

कहानी के अन्त का आरम्भ

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा! यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँगा; इसमें सन्देह है। आह! किन लहरों में मेरा विनाश हो जाय!"—महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इसी दीप-स्तम्भ पर से आलोक जला कर

अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा—जैसे आकाश-दीप!"

७

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप-स्तम्भ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़ कर पश्चिम उत्तर की ओर महा जल-व्याल के समान सन्तरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

प्लाट का पृष्ठ भाग।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, द्वीप-निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि-सदृश उसकी पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

——❀——

प्रसाद जी की यह कहानी पूर्ण रूप से भावनात्मक है। इसमें प्लाट थोड़ा है और चरित्र-चित्रण अधिक। संक्षेप में—"चम्पा एक क्षत्रिय बालिका है। उसके पिता वणिक मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। जलदस्यु बुद्धगुप्त ने जब आक्रमण किया तब चम्पा के पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जल समाधि ली। वणिक मणिभद्र की पाप वासना ने चम्पा को बन्दिनी बनाया।

बुद्धगुप्त एक क्षत्रिय था। लेकिन दुर्भाग्य से जलदस्यु बन कर जीवन बिता रहा था। बन्दी की अवस्था में बन्दिनी चम्पा से उसकी भेंट हुई। दोनों कौशल से स्वतंत्र हो गये।

चम्पा के संसर्ग में आने पर बुद्धगुप्त का पत्थर सा हृदय एक दिन सहसा चन्द्रकान्त मणि सा द्रवित हुआ। माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी चम्पा भी जलदस्यु को प्यार करने लगती है। इसके साथ-ही वह बुद्धगुप्त से घृणा भी करती है, क्योंकि वह समझती है कि वही उसके वीर पिता की मृत्यु का निष्ठुर कारण है।

बुद्धगुप्त कहता है—मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा! वह एक दस्यु के शस्त्र से मरे।

कम्पित स्वर में चम्पा बोली—यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त! वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय!

बुद्धगुप्त अनुभव करता है कि वह चम्पा के पास रहकर अपने हृदय पर अधिकार न रख सकेगा। इसलिए वह भारतवर्ष लौट जाता है।"

प्रसाद जी कहानी में अपनी ओज पूर्ण भाषा के कारण बड़ी सरलता से वातावरण उत्पन्न कर लेते हैं। वह प्रकृति पर भी चैतन्य का आरोपण करते हैं। उदाहरण के लिए—"भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कन्दुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।' 'पश्चिम का पथिक थक गया था।' 'उसका मुख पीला पड़ गया।' 'अपनी शान्त गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था।' 'वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।'

प्रसाद जी की शैली की यह विशेषता है।

आकाश-दीप की विविध घटनाओं में समय का दीर्घ अन्तर है। इससे कहानी का प्रभाव बिखरा हुआ प्रतीत होता है।

चरित्रों का विकास अधिकांशतः सांकेतिक रूप में हुआ है।

प्रसाद जी अपनी कहानी का अन्त प्रायः वहीं पर कर देते हैं, जहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से घटनाओं का चित्र पूर्ण हो जाता है, लेकिन आकाश-दीप में ऐसा नहीं हुआ है।

इस कहानी का अन्त वहीं पर हो जाता है, जहाँ चम्पा अपने द्वीप स्तम्भ पर से बुद्धगुप्त की नावों को उपकूल छोड़कर समुद्र की ओर जाते देखती है।

नवीन लेखकों से

अगर कोई इस बात का पता लगावे कि किसी महान् लेखक में सब से प्रथम लिखने की प्रेरणा कब से जागृत हुई तो उसे बहुत सी मनोरंजक सामग्री मिलेगी। साधारणतया अपने सुख-दुख की बातें दूसरों से कहने की अभिलाषा प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ रहती है। पास-पड़ोसियों के कृत्यों पर, बड़े बूढ़ों की टीका टिप्पणी, सभा सुसाइटियों में व्याख्यान-विवाद, मित्र-मंडली में हास्यालाप—इन सब अवसरों पर मनुष्य अपनी अभिव्यञ्जना शक्ति का ही परिचय देता है। गो कि स्वयं उसे अपनी सामर्थ्य का विशेष ध्यान नहीं रहता। कुछ लोग स्वभावतः संकोची होते हैं। वे साधारण मार्गों से अपने हृदय की बातें दूसरों पर नहीं प्रकट कर पाते। भावनाएँ उनके अन्दर ही उद्वेलित हुआ करती हैं। और कभी—अनायास ही वह अपनी इन भावनाओं को लेखनी-बद्ध करने के लिए बैठ जाते हैं। धीरे-धीरे वह रचना शक्ति के प्रति सजग हो उठता है। वह अनुभव करता है, लिखना उसके लिए उतना ही आवश्यक है, जितना अन्य कोई कार्य। वह लेखक माना जाने लगता है।

एक प्रकार से लेखन में लेखक की आत्मानुभूति रहती है। इसलिए लेखक की अनुभूति खूब विस्तृत होनी चाहिए। कहानी में कोई घटना इसीलिए अंकित की जाती है कि वह लेखक को प्रिय लगी। लेखक को अपनी ओर से विचार कर लेना चाहिए कि कहीं वह अपनी कहानी में मिथ्या अहंकार और दम्भ की

अभिव्यक्ति तो नहीं कर रहा है। लेखक को अपना उत्तरदायित्व समझ लेना चाहिए। अपने युग के विचारों की—समाज में अपने स्थान की जानकारी आवश्यक है। कहानी-लेखक बनने के लिए केवल प्रतिभा से ही काम नहीं चलता, निरंतर अध्ययन द्वारा उस प्रतिभा का परिष्कार करते रहना चाहिए।

लिखना सीखने की सर्वोत्तम प्रणाली यही है कि पहले जो विचार उठें उसे लिख डालना चाहिए और फिर कुछ समय बाद उसको ध्यान से पढ़ने पर लेखक को अपनी रचना का गुण-दोष स्वयं प्रकट होने लगता है। कहानी-लेखक को देखना चाहिए कि वह अपनी कहानी में क्या कहना चाहता है? क्या उस कहानी को पढ़कर पाठकों में भी वही भावनाएँ आन्दोलित होने लगेंगी? अगर कहानी में इतनी शक्ति नहीं तो वह असफल समझी जायगी!

एक नवीन कहानी-लेखक के लिए अपने से पहले के कहानी-लेखकों की कहानियों का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। उनकी विशेषताओं पर चिन्ह लगाकर उसे देखना चाहिए कि किस स्थल पर कहानी सुन्दर बन पड़ी है, कहाँ कैसे वातावरण की सृष्टि हुई है? चरित्र-चित्रण के लिए किन साधनों का उपयोग किया गया है? इन्हीं सब बातों पर ध्यान देने से हाथ मँजता है।

संसार में प्रतिक्षण कितनी घटनाएँ घटती रहती हैं। साधारणतः 'ऐसा भवितव्य था' कहकर लोग उनपर ध्यान नहीं देते लेकिन कहानी-लेखक तो उनपर आँख बन्द करके नहीं चल सकता। उसे अपनी 'क्यों' और 'कैसे' की तीक्ष्ण दृष्टि से प्रत्येक घटना का

अध्ययन करके उसके मूल तत्व तक पहुँच जाने की क्षमता प्राप्त करनी चाहिए।

साधारणतया लाल पगड़ी देखकर लोग दरोगा जी कहकर उनके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं, उनकी दृष्टि दरोगाजी के परिधान विशेष पर अटक जाती है, वे दरोगाजी को उनके अन्य रूप में—वास्तविक रूप में नहीं देख पाते। यह चित्र का एक खंडित अंश है। एक ही व्यक्ति के दो रूप होते हैं। एक तरफ वह आज्ञाकारी पुत्र और कोमल हृदय वाला पिता हो सकता है तो दूसरी ओर माया-ममता शून्य चतुर व्यवसायिक भी। इसी प्रकार दरोगाजी भी एक रूप में 'दरोगाजी' हैं तो दूसरे रूप में सुख-दुख की भावनाओं से विचलित होने वाले एक साधारण मनुष्य भी हैं। किसी भी व्यक्ति को इसी दृष्टि-कोण से देखने पर उसके यथार्थ रूप का दर्शन हो सकता है।

व्यक्ति अपने में सम्पूर्ण नहीं है। वह भी विशाल सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था का एक अंश है। पारिवारिक सीमाओं में वातावरण के प्रभाव की छाया में उसके चरित्र का निर्माण होता है। जिस तरह रंग-मंच पर अभिनेता थोड़ी देर के लिए तरह तरह की आकृति धारण कर, उछल-कूद का खेल दिखला कर परदे में छिप जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति भी इस दुनिया में आपना 'पार्ट' अदा कर रहा है। यह सच है कि कभी-कभी वह व्यक्ति महान, ऐश्वर्यशाली और शक्तिशाली होने का स्वांग भरता है। कुछ क्षीण बुद्धि के मनुष्य उसके इस विकृत रूप से आतं-

कित भी हो जाते हैं; लेकिन मनुष्य अपने अन्तरतम प्रदेश में भलीभाँति जानता है कि वह क्या है !

कुछ समय हुआ एक समाचार प्रकाशित हुआ था, जिसका आशय इस प्रकार था—

"एक दिन प्रातःकाल नर्मदा नदी के तट पर दो प्रेमियों का शव तैरता हुआ दिखाई पड़ा। युवती ने अपने प्रिय को साड़ी के आंचल से बाँध रखा था, जिससे डूबने पर वे एक दूसरे से अलग न हो सकें। सम्भवतः वे दोनों युक्तप्रान्त के रहने वाले थे। सामाजिक अड़चनों के कारण घर से भागना पड़ा। कहीं दूर देश जाकर विवाह कर लेने का निश्चय था। लेकिन पुलिस पीछा करती रही, अतएव अदालत के भय के कारण ऐसा करना पड़ा।"

यह दृश्य बहुत ही कारुणिक है। कोई भी मनुष्य सहानुभूति प्रकट किये बिना नहीं रह सकता; लेकिन कहानी-लेखक के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं। उसे तो अन्य सभी बातों पर विचार करना चाहिए। क्या यह सब घटनाएँ अकारण घटतीं हैं? क्या इनका कोई प्रयोजन नहीं है? स्वभावतः ऐसे कितने प्रश्न सामने उपस्थित होते हैं।

समुद्र की लहरें ऊँची उठकर दर्शकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। लेकिन उन लहरों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, वे तो उस विशाल जल-राशि की स्थिति विशेष की प्रतीक हैं। इसी प्रकार घटनाओं का भी समाधान 'इकाई' के रूप में देखने पर नहीं मिल सकता। वे तो किसी विशेष सामाजिक और शासन

व्यवस्था की परिचायक हैं। युवक-युवती ने आत्महत्या कर ली, इस घटना का वास्तविक रहस्य इतने ही दृश्य से नहीं प्रकट होता। कल्पना कीजिए; उन दोनों के वातावरण की, जिसके अन्दर उनका पालन-पोषण हुआ—उन विचारों और पुरातन प्रथाओं की, जिसके शिकंजे से छूटने के लिए वे भाग खड़े हुए—उस शासन व्यवस्था की, जो इस प्रकार की सामाजिक स्थिति को मान्यता प्रदान करती है। ऐसे ही अन्य प्रश्नों पर विचार करके सम्पूर्ण चित्र आँखों के सामने खींचा जा सकता है। इसके बाद इस ढाँचे को सम्मुख रखकर, इस घटना पर सरलता से कहानी की इमारत खड़ी की जा सकती है।

अगर थोड़ा परिश्रम कर के अन्वेषण वाली दृष्टि से काम लिया जाय तो कहानी के लिए सामग्री की कमी नहीं रहती। प्रेमचन्द जी ने सभी श्रेणी के मनुष्यों के चित्र उपस्थित किये हैं। साधारणतया उनके पाठक यह विचार करते होंगे कि उनकी 'सोसाइटी' विशाल थी और हर तरह के मनुष्यों से उनका संसर्ग था। प्रेमचन्द जी की प्रकृति ठीक इसके विपरीत थी। वे बहुत कम लोगों से मिलते-जुलते थे। मेले और जलसों से वह सदैव दूर रहते। लेकिन जीवन के नियमित क्षेत्र में ही अपनी अनोखी पर्यवेक्षण-शक्ति के कारण उन्हें प्रत्येक वर्ग के मनुष्यों की अनुभूति का ज्ञान था। प्रसाद जी भी अधिकतर अपने घर पर ही रहते थे; लेकिन प्रकाण्ड अध्ययन के कारण वह इतने विविध चरित्र प्रस्तुत कर सके। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक

'डिकेन्स' की स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि जिस सड़क से वह निकल जाता वहाँ की दुकानों के अधिकांश साइनबोर्डों का नाम तक बता सकता था।

नवीन कहानी-लेखकों के लिए सफलता प्राप्त करने का एक यह भी मार्ग है कि वे अपने दैनिक जीवन की अनेक घटनाओं को एकत्रित करते रहें और उन्हीं के आधार पर अपनी कहानियों का प्लाट बनावें। क्योंकि सच्ची बात चाहे अपरिष्कृत रूप में भी रखी जाय तो वह आकर्षक और मनोरंजक होती है।

लेखक की जैसी दिनचर्य्या होती है, उसकी छाया कहानियों में भी झलकती है। वह कभी भी अपनी वास्तविक स्थिति छिपा नहीं सकता। बहुत से नवीन लेखक अपनी कहानियों में प्रचलित आदर्शों का ढिढोंरा पीटने लगते हैं, लेकिन अधिकांश ऐसी कहानियाँ असफल होती हैं। क्योंकि लेखक इन कहानियों में जो कुछ कहता है, उसकी वास्तविकता के सम्बन्ध में उसका कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं। नवीन लेखकों के लिए यह अच्छा होगा कि स्वीकारोक्ति-भावना (कन्फेशनल मूड) के साथ अपनी कहानियाँ लिखें। इस मार्ग का अवलम्बन करने पर गलतियों की कम सम्भावना रहती है।

संसार में 'पाप' और 'पुण्य', 'भलाई' और 'बुराई' नाम की कोई चीज नहीं। इनकी उपज मनुष्य के मस्तिष्क से ही हुई है। सामाजिकता की रक्षा करने के लिए ही नैतिक आदर्शों की कल्पना की गई थी। साधनों और परिस्थितियों में परिवर्त्तन होने

के साथ ही किसी देश के सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्शों में भी परिवर्त्तन हुआ करता है।

नवीन लेखकों को चाहिए कि वे चीजों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें—रूढ़ियों से अलग रहकर।

बंग भाषा के स्वर्गीय वंकिमचन्द्र ने नवीन लेखकों को कुछ परामर्श दिये थे, जिनमें से कुछ अंशों का आशय हम यहाँ दे रहे हैं।

१—यश के लिए कभी मत लिखो। अगर यश के लिए लिखोगे तो न तुम्हें यश मिलेगा, न रचना ही अच्छी बन सकेगी। रचना, सुन्दर बन पड़ने पर यश अपने आप ही प्राप्त होता है।

२—पैसों के लिए कभी मत लिखो। योरप में इस समय बहुत से लेखक पैसों के लिए लिखते हैं। उन्हें पैसे मिलते भी हैं; लेकिन हमारे यहाँ अभी वह समय नहीं आया है। पैसों के लिए लिखने से लोकरंजन की प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है। देश की वर्तमान अवस्था में पाठकों की रुचि का अनुसरण करने की अपेक्षा स्वयं सांस्कृतिक आधार पर उनकी रुचि का निर्माण करने की अधिक आवश्यकता है।

३—अगर तुम अपने मन में समझो कि तुम्हारे लिखने से देश का अथवा मनुष्य जाति का कल्याण होगा तभी इस क्षेत्र में आओ।

४—जो कुछ लिखा जाय उसे उसी समय प्रकाशित नहीं करना चाहिए। कुछ दिनों तक उसे रखे रहना चाहिए। इसके बाद संशोधन करने पर रचना और सुन्दर बन जाती है।

५—जिस विषय में तुम्हारा अध्ययन नहीं उसपर कभी टीका-टिप्पणी मत करो।

६—अपनी विद्या अथवा विद्वत्ता प्रदर्शित करने की चेष्टा न करो। अगर तुम विद्वान हो तो तुम्हारी विद्वत्ता रचना में प्रकट हो जायगी। आजकल बहुत से लेखक अंग्रेजी, संस्कृत, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं के

उद्धरण से अपनी रचनाएँ भर देते हैं। जिस भाषा का तुम्हें ज्ञान नहीं उसके वाक्य या ग्रन्थों के अंश औरों की सहायता से उद्धृत मत करो।

७—किसी का अनुकरण मत करो। अनुकरण में अधिकतर दोषों का ही अनुकरण होता है, गुणों का नहीं। सदा मौलिक लिखने की चेष्टा करो।

८—जिस बात का प्रमाण न दे सको, उसे कभी मत लिखो। यद्यपि रचना में प्रमाणों की आवश्यकता न हो, फिर भी उनकी जानकारी तुम्हारे लिए आवश्यक है।

बहुत से नवीन कहानी-लेखक अपनी रचनाओं के साथ सम्पादकों के पास लम्बे-लम्बे पत्र लिख भेजते हैं। जब तक किसी सम्पादक से घनिष्ठ परिचय न हो उसे कभी पत्र न लिखना चाहिए। पत्र के स्थान पर रचना के साथ इस आशय का एक टाइटिल लगा देना उपयुक्त होगा—(१) कहानी का शीर्षक, (२) शब्द संख्या, (३) लेखक का नाम, (४) उसका पता।

टाइटिल के एक कोने में 'निवेदन' लिखकर एक नोट दे देना चाहिए कि कहानी स्वीकृत होने पर, इसकी सूचना दें। अथवा अस्वीकृत होने पर इसे वापस कर दें।

कहानी किसी पत्र अथवा पत्रिका में भेजने के साथ ही नवीन लेखक को उसकी एक प्रति अपने पास रखना चाहिए। यदि कहानी की पहली प्रति खो जाय तो यह काम आवेगी। इस प्रति पर सुविधा के लिए इन बातों को नोट कर लेना आवश्यक है—(१) कहानी किस पत्रिका में भेजी! (२) भेजने की तारीख, (३) कोई उत्तर मिला अथवा नहीं।

———

लेखक के सम्बन्ध में

कहानी-कला की प्रामाणिकता इसी से सिद्ध होती है कि इसके लेखक पं० विनोदशङ्कर व्यास हैं, जिन्होंने अपनी छोटी भावात्मक कहानियों से हिन्दी साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया है। हिन्दू युनिवर्सिटी में अंग्रेजी साहित्य के प्रोफ़ेसर, बी० एल० सहानी, का मत है—I have no hesitation in saying that he (Pt. Vinod Shankar Vyas) is by far the greatest Lyrical short story writer in India to-day.

श्री० मैथिलीशरण गुप्त—पंडित विनोदशंकर व्यास की लेखनी में मुझे गति मालूम पड़ती है। स्वच्छन्दतापूर्वक तोड़े लेकर जब वह अपनी ताल पर आकर, अचानक रुकती है, तब भी मानो अपने आवेश के कारण वह चंचल रहती है, वेग सँभालने में भी एक मुद्रा बन जाती है। मैंने उनकी रचना से आनंद प्राप्त किया है, इसलिये इसका अभिनंदन करता हूँ।

मधुकरी



पहला खण्ड

३१ कहानियाँ

दूसरा खण्ड

३३ कहानियाँ

पुस्तक-मन्दिर

काशी

हिन्दी के प्रमुख १८ कहानी लेखकों की ३१ सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह

सम्पादक -

विनोद शङ्कर व्यास

माननीय मत

स्व० श्री प्रेमचन्द जी—संग्रह सुन्दर हुआ है और कहानियों के चुनाव में सुरुचि से काम लिया गया है। ऐसे सुन्दर संग्रह पर मैं आपको बधाई देता हूँ।

पं० ज्वालादत्त शर्मा—मधुकरी आपने खूब निकाली, बधाई है। कहानियों का संग्रह बहुत बढ़िया हुआ है। भूमिका भाग तो बहुत ही अच्छा हुआ है। हिन्दी में अभी तक ऐसा सुन्दर संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ।

ल. ना. प्रेस, काशी।